Con. 3. VII.15.48
350

अंक 7
संख्या 15

सोमवार
29 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रतिज्ञा ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर..... 941
भीवष्य के कार्यक्रम के संबंध में वक्तव्य 941
विधान का मसौदा–(*जारी*) 941-942
[अनुच्छेद 8 पर विचार]
प्रतिज्ञा ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर..... 943
बैठकों के समय के सम्बन्ध में वक्तव्य 943
विधान का मसौदा–(*जारी*) 943-967
[अनुच्छेद 8, 8-क, 9, 10, 11, 11-क तथा 11-ख पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 29 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक प्रातः दस बजे कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में समवेत हुई। उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुखर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य महोदय ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

श्री बलवन्त सिंह मेहता (संयुक्त राज्य : राजस्थान)

भविष्य के कार्यक्रम के सम्बन्ध में वक्तव्य

***उपाध्यक्ष** (डा. एच.सी. मुखर्जी): अनुच्छेद 8 पर वादानुवाद आरम्भ करने के पूर्व, जिसे कि अभी मतदान के लिये उपस्थित नहीं किया गया है, मैं सभा की अनुमति से उसे यह सूचित करना चाहता हूं कि जिस समय यह निर्णय किया गया था हम कल से सन्ध्या को तीन बजे से आठ बजे तक सत्रस्थ रहें, यद्यपि यह निर्णय रस्मी तौर पर नहीं किया गया था, मुझसे कई सदस्यों ने यह कहा कि यह व्यवस्था कई कारणों से असुविधाजनक होगी, इसलिये कल से हम प्रातः साढ़े नौ बजे समवेत होंगे और डेढ़ बजे तक कार्य करते रहेंगे। इस प्रकार हम प्रतिदिन चार घंटे कार्य कर सकेंगे।

दूसरी बात जो मैं सभा से कहना चाहता हूं यह है कि हम 13 दिसम्बर तक सत्रस्थ रहेंगे और फिर सत्रावसान हो जायेगा। उसके उपरान्त हम फिर 27 दिसम्बर को समवेत होंगे। ठीक समय बाद को विज्ञापित किया जायेगा।

विधान का मसौदा–(जारी)

अनुच्छेद 8–(*जारी*)

***उपाध्यक्ष:** क्या कोई माननीय सदस्य अनुच्छेद 8 पर बोलना चाहते हैं? यदि कोई नहीं बोलना चाहते हैं तो मैं उसे मतदान के लिये उपस्थित करना चाहता हूं।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, सभा के लिये आवश्यक संख्या में सदस्य उपस्थित नहीं हैं। मैं कार्यवाही को रोकना नहीं चाहता परन्तु इस प्रकार की सभा में हम नियमानुसार कोई भी कार्य नहीं कर सकते हैं।

(घंटियां बजाई गईं।)

(सभा के लिये सदस्य आवश्यक संख्या में उपस्थित न थे।)

***उपाध्यक्ष:** सभा पौन घंटे के लिये स्थगित की जाती है।

इसके उपरान्त सभा दस बज कर पच्चीस मिनट तक के लिये स्थगित हो गई।

दस बज कर पच्चीस मिनट पर सभा फिर समवेत हुई।
उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

***उपाध्यक्ष:** मुझे यह ज्ञात हुआ है कि एक और सदस्य महोदय को रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने हैं और प्रतिज्ञा-ग्रहण करनी है।

निम्नलिखित सदस्य महोदय ने प्रतिज्ञा-ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

लेफ्टीनेंट कर्नल दलेल सिंह (संयुक्त राज्य : राजस्थान)

बैठकों के समय के सम्बन्ध में वक्तव्य

***उपाध्यक्ष:** उन सदस्यों के लाभार्थ जो सभा में समय पर उपस्थित न थे, मुझे फिर यह घोषित करना है कि कल से हम प्रात: साढ़े नौ बजे समवेत हुआ करेंगे और डेढ़ बजे तक कार्य करते रहेंगे। इसके अतिरिक्त इस सत्र की अन्तिम बैठक तेरह दिसम्बर को होगी और उसके उपरान्त हम फिर 27 दिसम्बर को समवेत होंगे। ठीक समय बाद को घोषित किया जायेगा।

क्या मैं नम्रतापर्वूक यह निवेदन कर सकता हूं कि सदस्यों के लिये यह अनुचित है कि वे सभा में देर से उपस्थित हों। इस कारण आज हमारे बीस मिनट बेकार चले गये और मेरी समझ में नहीं आता कि हम लोगों को इसकी क्या सफाई देंगे। (धन्य, धन्य)

विधान का मसौदा–(*जारी*)
अनुच्छेद 8–(*जारी*)

***उपाध्यक्ष:** क्या हम अनुच्छेद 8 पर वादानुवाद आरम्भ करें? क्या उस पर कोई माननीय सदस्य बोलना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन से कुछ कठिनाई उत्पन्न हो जाती है जिसे दूर करना आवश्यक है। विधान के मसौदे से उनके कथनानुसार जो अनर्गल स्थिति उत्पन्न हो गई है उसे दूर करने के लिये उन्होंने अपना संशोधन उपस्थित किया है। उनके तर्क को यदि मैं ठीक समझ पाया हूं तो उसका अर्थ यह है कि कानून की परिभाषा में हमने रूढ़ि को भी सम्मिलित किया है और उसे

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

सम्मिलित करने पर फिर हम यह कहते हैं कि राज्य को किसी भी कानून को बनाने की शक्ति नहीं है। उनके कथनानुसार इसका अर्थ यह है कि राज्य को रूढ़ि बनाने की भी शक्ति होगी क्योंकि हमारी परिभाषा के अनुसार कानून में रूढ़ि सम्मिलित है। मेरा तो यह विचार है कि इस प्रकार का अर्थ निकालना सम्भव नहीं है और उसका सीधा-सादा कारण यह है कि अनुच्छेद 8 का उपखण्ड (3) पूरे आठवें अनुच्छेद पर लागू होता है और केवल आठवें अनुच्छेद के उपखंड (2) पर लागू नहीं होता। ऐसी स्थिति में केवल यही अर्थ निकालना उचित है और यही सम्भव भी है कि 'कानून' शब्द को प्रसंगानुसार समझा जाये अर्थात् जहां तक अनुच्छेद 8 के उपखण्ड (1) का सम्बन्ध है कानून में रूढ़ि सम्मिलित होगी और जहां तक उपखण्ड (2) का सम्बन्ध है कानून में रूढ़ि सम्मिलित नहीं होगी। मेरी समझ में यही उचित अर्थ है और यदि यह अर्थ लगाया जाये तो जिस अनर्गलता की ओर मेरे मित्र ने संकेत किया है वह उत्पन्न न होगी।

परन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि जो लोग कानून की व्याख्या के नियमों से अच्छी प्रकार परिचित नहीं हैं वे उसका वह अर्थ लगा सकते हैं जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद लगाने का प्रयास कर रहे हैं। इसलिये इस कठिनाई को दूर करने के लिये मैं आपकी अनुमति से यह सुझाव उपस्थित करना चाहता हूं कि अनुच्छेद 8 के उपखण्ड (3) के सम्बन्ध में मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें मुझे ''In this article'' (इन अनुच्छेद में) शब्दों के बाद निम्नलिखित शब्द जोड़ने की आज्ञा दी जाये:

''Unless the context otherwise requires''

(यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो)। इससे अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

''In this article, unless the context otherwise requires–

(a) The expression 'law' includes any ordinance, order, bye-law, rule, regulation, notification, custom or usage having the force of law in the territory of India or any part therefor;

(b) the expression...''

(इस अनुच्छेद, यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो–(क) 'कानून' शब्द में ऐसे सब अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, आनियम, अधिसूचना, रूढ़ि अथवा परिपाटी समाविष्ट होंगी जिनका भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में विधि सदृश प्रभाव है;

(ख) शब्द...]

मुझे पूरा पढ़ने की आवश्यकता नहीं है

इस प्रकार यदि अनुच्छेद 8 (1) के प्रसंग से यह अर्थ अपेक्षित हो कि 'कानून शब्द में रूढ़ि सम्मिलित है तो यह अर्थ लगाया जा सकेगा। यदि अनुच्छेद 8 के उप-खण्ड (2) के प्रसंग से यह अर्थ अपेक्षित न हो कि कानून शब्द में रूढ़ि सम्मिलित है तो 'कानून' का अर्थ इस प्रकार न लगाया जा सकेगा कि उसमें रूढ़ि भी सम्मिलित हो। मेरे विचार से मेरे मित्र ने अपने संशोधन में जिस कठिनाई की ओर संकेत किया है वह इससे दूर हो जायेगी।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक संशोधन पर मत लूंगा। मैं पुरानी सूची के अनुसार संशोधनों की संख्या बताऊंगा। मैं संशोधन संख्या 252 पर, जो मि. महबूब अली बेग के नाम से है, मत लेता हूं।

''That the proviso to clause (2) of article 8 be deleted'

[अनुच्छेद ख के खण्ड (2) का परादिक निकाल दिया जाये]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 259 को, जो श्री लोकनाथ मिश्र के नाम से है, उपस्थित करता हूं।

''अनुच्छेद 8 के खण्ड 2 के बाद निम्नलिखित नया खण्ड प्रविष्ट किया जाना चाहिये और वर्तमान खण्ड (3) की संख्या बदल कर उसे खण्ड (4) कर देना चाहिये:

(3) The Union or the State shall not undertake any legislation, or pass any law discriminatory to some community or communities or applicable to some particular community or communities and to other.''

(संघ या राज्य कोई ऐसा कानून बनाने का उपक्रम न करेगा या ऐसा कोई कानून स्वीकार न करेगा जो किसी सम्प्रदाय या सम्प्रदायों के लिये विभेद बरतता हो अथवा किसी विशेष सम्प्रदाय या सम्प्रदायों के लिये ही लागू होता हो और अन्य के लिये लागू न होता हो।)

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं डा. अम्बेडकर द्वारा संशोधित संशोधन संख्या 260 को उपस्थित करता हूं:

''अनुच्छेद 8 के खण्ड (3) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'In this article unless the context otherwise requires—

[उपाध्यक्ष]

(a) The expression law includes any ordinance, order, bye-law, rule, regulation, notification, custom or usage having the force of law in the territory of India or any part thereof;

(b) the expression ''laws in force'' includes laws passed or made by a legislature or other competent authority in the territory of India before the commencement of this Constitution and not previously repealed, notwithstanding that any such law or any part thereof may not be then in operation either at all or in particular areas.' ''

(इस अनुच्छेद में, यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो:-(क) 'कानून' शब्द में ऐसे सब अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, आनियम, अधिसूचना, रूढ़ि अथवा परिपाटी समाविष्ट होंगी जिनका भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में विधि सदृश प्रभाव है।

(ख) 'प्रभावी कानून' शब्दों में ऐसे कानून समाविष्ट हैं जिनको विधान के आरंभ के पूर्व भारत के राज्य-क्षेत्र में किसी विधान-मंडल ने अथवा किसी अधिकृत प्राधिकारी ने स्वीकार किया हो या बनाया हो किन्तु जिनकी पुनरावृत्ति न हुई हो, चाहे ऐसा कोई कानून या उसका कोई भाग उस समय बिल्कुल ही प्रभावी न हो अथवा किन्हीं विशेष क्षेत्रों में प्रभावी न हो।)?

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 8 के खण्ड (3) में 'custom or usage' (रूढ़ि अथवा परिपाटी) शब्दों के स्थान में 'custom or usage or anything' (रूढ़ि अथवा परिपाटी आदि) शब्द रखे जायें।''

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 8 के खण्ड (3) में 'custom or usage having the force of law in the territory of India or any part thereof' (रूढ़ि अथवा परिपाटी समाविष्ट होंगी जिनका भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में विधि सदृश प्रभाव है) शब्द निकाल दिये जायें।

संशोधन गिर गया।

***एक माननीय सदस्य:** क्या मैं जान सकता हूं कि आप संशोधनों को पुरानी सूची से पढ़ रहे हैं या नई सूची से?

***उपाध्यक्ष:** मैं सुविधा के लिये संशोधनों को पुरानी सूची से पढ़ रहा था। अब हम नई सूची की संख्याओं के अनुसार विचार करेंगे। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि नई सूची माननीय सदस्यों को कल शाम ही दी गई है।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 8, संशोधित रूप में, विधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अनुच्छेद 8 के सम्बन्ध में कुछ अन्य संशोधन भी हैं जिनका आशय यह है कि एक नये अनुच्छेद 8(क) को स्थान दिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** वे नये अनुच्छेद हैं जिनको अभी उठाया जायेगा।

संशोधन संख्या 266 से 269 तक और 272 भाषा और लिपि के सम्बन्ध में है जिन्हें सभा के निर्णयानुसार स्थगित किया जाना चाहिये। अब मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 270 को उठाऊंगा।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 8 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'(8-क) Unless the context otherwise requires, the Rights of Citizens hereinafter in this part of Constitution shall be deemed to be the obligation of the State as representing the community collectively and the obligations of the citizens shall be deemed to be the Rights of the State representing the community collectively.' ''

(यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अभिप्रेत न हो तो विधान के इस भाग में परिभाषित नागरिकों के अधिकार सामूहिक रूप से राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य के दायित्व समझे जायेंगे और नागरिकों के दायित्व, सामूहिक रूप से राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य के अधिकार समझे जायेंगे।)

श्रीमान्, मैं इस सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता। आपकी अनुमति से मैं यह बताना चाहता हूं कि इस संशोधन का आशय उस संशोधन के आशय के

[प्रो. के.टी. शाह]

समान है जिसे सभा ने निदेशक सिद्धांतों पर विचार करते समय अस्वीकार कर दिया था। मेरे विचार से पुरानी संख्या 848 थी। इसका आशय वही है। मैं यह बता सकता हूं कि इसकी संख्या और सम्भवतः उद्देश्य कुछ भिन्न है परन्तु चूंकि मैं सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता इसलिये मैं इस संशोधन को वापस लेने की आज्ञा चाहता हूं क्योंकि इसका उद्देश्य राज्य के अधिकारों को नागरिकों के दायित्व और नागरिकों के अधिकारों को राज्य के दायित्व करना है।

***उपाध्यक्षः** क्या सभा माननीय सदस्य को अपना संशोधन वापस लेने की आज्ञा देती है?

संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, यदि मुझे अपने विरोध में बोलने दिया जाये तो मुझे यह कहना है कि मेरी समझ में सूची में उल्लिखित संशोधन संख्या 271 थोड़ा-बहुत नियम-विरुद्ध है क्योंकि यह स्पष्टतया एक संशोधन या खण्ड के रूप में नहीं है बल्कि मसौदाकार से एक खण्ड समाविष्ट करने के लिये केवल सिफारिश करता है। मैं इसे उपस्थित नहीं करना चाहता।

***उपाध्यक्षः** नई सूची में आगे का संशोधन 273वां संशोधन है और यह श्री लोकनाथ मिश्र के नाम से है।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि:

''अनुच्छेद 8 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद 8(क) प्रविष्ट किया जाये:

निर्वाचनाधिकार

8 (क) (1) Every citizen who is not less than 21 years of age and is not otherwise disqualified under the Constitution or any law made by the Union Parliament or by the Legislature of his State on any ground, e.g., non-residence, unsoundness of mind, crime or corrupt or illegal practice, shall be entitled to be registered as a voter at such elections.

(2) The elections shall be on the basis of adult suffrage, as described in the next preceding sub-clause but they may be indirect, i.e., the Poura and Grama Panchayats or a group of villages, a township or a part of it having a particular number of voters or being an autonomous unit of local self-government shall be required to elect primary members, who in their turn, shall elect members to the Union Parliament and to the State Assembly.

(3) The Primary Members shall have to recall the member they elected to the Parliament or the Assembly of the State.

(4) A voter shall have the right to election and the cost of election shall be met by the State.

(5) Every candidate must be elected by the people and even if there is no rival, no candidate shall be elected unless he gets at least 1/3 of the total votes.' ''

[(1) प्रत्येक नागरिक, जो 21 वर्ष से कम आयु का न हो और इस विधान के अधीन या संघीय पार्लियामेंट या उसके राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाये हुये किसी कानून के अधीन किसी कारण अर्थात् अनिवास, अस्वस्थ मस्तिष्क, अपराध या भ्रष्ट अथवा अवैध आचार के कारण अपात्र न हो तो वह इन निर्वाचनों के लिये मतदाता के रूप में अपने नाम की रजिस्ट्री कराने का अधिकारी होगा।

(2) जैसा कि दूसरे पूर्ववर्त्ती उपखंड में वर्णित है, निर्वाचन प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर होंगे किन्तु वे व्यवहृत होंगे अर्थात् पुर और ग्राम-पंचायत या ग्रामों का कोई समूह या कोई नगर अथवा उसका कोई भाग, जिसमें किसी विशेष संख्या में मतदाता बसते हों या जो स्थानीय स्व-शासन का स्वायत्तशासी प्रदेश हो, प्रारम्भिक सदस्यों को निर्वाचित करेगा और वे संघीय पार्लियामेंट के और राज्य के विधान-मंडल के सदस्यों को निर्वाचित करेंगे।

(3) प्रारम्भिक सदस्यों को यह अधिकार होगा कि वे पार्लियामेंट के लिये अथवा राज्य के विधान-मंडल के लिये अपने निर्वाचित किसी सदस्य को वापस बुला लें।

(4) मतदाता को निर्वाचनाधिकार प्राप्त होगा और निर्वाचन का खर्च राज्य उठायेगा।

(5) प्रत्येक उम्मीदवार लोगों द्वारा निर्वाचित होगा और किसी प्रतिद्वन्द्वी के न होने पर भी यदि किसी उम्मीदवार को कुल वोटों की कम से कम 1/3 वोटें न मिलें तो वह निर्वाचित न होगा।]

श्रीमान्, इस नये अनुच्छेद को मैंने उन निर्वाचनों को ध्यान में रख कर उपस्थित किया है जो प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर होंगे। गांवों में काम करने वाले और अपने लोगों से परिचित एक व्यक्ति के नाते मेरा यह निवेदन है कि मैंने जो नया अनुच्छेद प्रस्तावित किया है उससे प्रौढ़ मताधिकार और जनतंत्र की प्रतिष्ठा बढ़ जायेगी और वे सारयुक्त हो जायेंगे। मेरा यह निवेदन है कि यद्यपि अभी इस सभा में ऐसा स्थान नहीं पाया है कि मेरी बातों का प्रभाव हो किन्तु जनतंत्र, बुद्धिमानों द्वारा संचालित जनतंत्र के नाम पर हमें प्रौढ़ मताधिकार को सार्थक बनाने

[श्री लोकनाथ मिश्र]

के लिये अपने निर्वाचन-सम्बन्धी नियमों को इस प्रकार बनाना चाहिये कि जनतंत्र और प्रौढ़ मताधिकार का उपहास न हो। इस नये अनुच्छेद के पहले पैरा में और दूसरे पैरा के पहले वाक्य में केवल अनुच्छेद 67(6) और 149(2) को फिर से उद्धृत किया गया है। इसलिये मुझे इस सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

पैरा (2) बहुत महत्त्वपूर्ण है और हम बहुत-कुछ यह निश्चित कर चुके हैं कि आगामी निर्वाचन अथवा भविष्य के निर्वाचन प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर होंगे। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक नागरिक जो कानून के अधीन अपात्र न हो और 21 वर्ष या उससे अधिक आयु का हो तो वह मतदाता होने का अधिकारी है और वह संघीय संसद् और राज्यों के विधान-मंडलों के लिये सदस्यों को निर्वाचित कर सकता है। यह लोगों की एक महान् आकांक्षा है। परन्तु हम अपने लोगों से भी परिचित हैं। वे सीधे और नेक हैं परन्तु वे उतने चालाक और बुद्धिमान नहीं हैं जितने कि कूटनीतिज्ञ अथवा विभिन्न सभाओं में उनका प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य होंगे। यदि हम प्रौढ़ मताधिकार देना चाहते हैं तो हमें उसकी रक्षा करनी चाहिये और ऐसा प्रबन्ध करके उसका स्वरूप निश्चित करना चाहिये कि प्रत्येक प्रौढ़ वयस्क जो मतदाता होने का अधिकारी है अपने प्रतिनिधि को बुद्धिमत्ता से तथा सही ढंग पर चुन सकेगा। यही नहीं बल्कि अपने प्रतिनिधि को बुद्धिमता से और सही ढंग पर चुनने के अतिरिक्त वह प्रतिक्षण इसकी जांच कर सकेगा कि केन्द्र की अथवा राज्यों की विभिन्न सभाओं में उसके प्रतिनिधि क्या कर रहे हैं। विधान के मसौदे में आप देखेंगे कि संघीय संसद में 7,50,000 लोगों का एक प्रतिनिधि होगा। मेरा यह निवेदन है कि यह एक बहुत बड़ी संख्या है और यदि हम जो कुछ कह रहे हैं उसे कार्यान्वित नहीं करना चाहते तो एक सदस्य के लिये इन 7,50,000 लोगों को शिक्षित बनाना, उनका हितसाधन करना, उनकी सेवा करना, उनके विचारों से परिचित होना और उनके विचारों से परिचित होकर सभा के सम्मुख उनकी शिकायतों को रखना और उनकी समुन्नति के लिये यथासम्भव प्रयत्न करना एक कठिन कार्य होगा। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि प्रौढ़-मताधिकार व्यवहृत होना चाहिये। व्यवहृत इस अर्थ में कि निर्वाचन-क्षेत्रों को निश्चित करने के उपरान्त अर्थात् यह निश्चित करके कि प्रत्येक क्षेत्र में 7,50,000 मतदाता होंगे, हम इन निर्वाचन-क्षेत्रों को स्वायत्तशासी प्रदेशों में विभाजित कर दें और ये प्रदेश अपने प्रारम्भिक सदस्यों का निर्वाचन करें। उदाहरणार्थ 7,50,000 लोगों के बीच

यदि प्रत्येक गांव में या स्वायत्तशासी प्रदेश में 1,000 मतदाता हों तो हमारे 750 प्रदेश हो जायेंगे। यदि प्रत्येक प्रदेश में एक पंचायत हो जिसके तीन या पांच सदस्य हों तो हमारे 750 × 5 अर्थात् 3,750 प्रारम्भिक सदस्य हो जायेंगे। ये 3,750 प्रारम्भिक सदस्य संघीय संसद के लिये अथवा राज्य की सभा के लिये अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करेंगे। यदि इस प्रकार की व्यवस्था की गई तो इससे बहुत भलाई होगी क्योंकि 7,50,000 लोग इतने अधिक कि 3,750 प्रारम्भिक सदस्यों को निर्वाचित करेंगे और ये 3,750 सदस्य अपने विवेक से काम लेंगे और जिस व्यक्ति को वे अपना प्रतिनिधि बनायेंगे उससे भली-भांति परिचित होंगे। निर्वाचन की यह समुचित तथा सुव्यवस्थित प्रणाली होगी। यदि इस प्रकार की व्यवस्था न की गई तो निर्वाचनों में जो होता आया है वही आगे भी होगा। हम धूल उड़ायेंगे, चीख-चीख कर पुकारेंगे, नारे उठायेंगे और लोगों पर जादू करेंगे। पांच वर्ष के उपरान्त किसी महीने में एक या दो दिन के लिये हम भाषण देंगे, बोलते रहेंगे, लोगों को उत्तेजित करेंगे और जनता से किसी दल के प्रति निष्ठा रखने के लिये कहेंगे। इसका फल यह होगा कि पांच वर्ष में केवल एक महीने के लिये लोग राजनैतिक संगठनों के अत्यधिक सम्पर्क में आयेंगे। हम उन्हें उम्मीदें दिलायेंगे और वे उम्मीदें निर्वाचन के समाप्त होते ही मिट्टी में मिल जायेंगी। यह कोई उचित व्यवस्था न होगी। यदि हमारा उद्देश्य वास्तव में यह है कि प्रौढ़-मताधिकार लोगों को शिक्षित बनाने के लिये दिया जा रहा है और निर्वाचन शिक्षा के साधन होंगे तो निर्वाचन-क्षेत्रों को स्थानीय स्वायत्त-शासी प्रदेशों में, प्रबन्धकारी प्रदेशों में विभाजित करने के अतिरिक्त हम अन्य किसी प्रकार अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकते। ये प्रदेश प्रतिनिधियों के निकट सम्पर्क में रहेंगे और प्रतिनिधि अपने प्रदेशों के निकट सम्पर्क में रहेंगे जिसके फलस्वरूप शिक्षा, परामर्श तथा पथप्रदर्शन की समुचित व्यवस्था हो सकेगी। मेरा यह निवेदन है कि यह एक लज्जा की बात है कि जनतंत्र लोगों के नाम पर चलता है परन्तु वास्तव में लोगों का उसमें कोई भी स्थान नहीं रहता। इसका कारण यह है कि लोग क्षुद्र होते हैं और वे अपने सीमित अनुभव से ऊंचे उठकर अधिक क्षमता प्राप्त नहीं कर सकते हैं और अपनी ऐतिहासिक तथा प्राचीन परम्परा के आधार पर निर्माण करने के अतिरिक्त अन्य प्रकार से अपनी क्षमता का विकास नहीं कर सकते हैं। वे बड़े-बड़े मामलों का नियंत्रण सफलतापूर्वक तभी कर सकते हैं जब वे मिलजुल कर कार्य करें तथा छोटे-छोटे मामलों का स्वयं नियंत्रण करें और महत्त्वपूर्ण विषयों का निर्णय करने के लिये अपने अनुभव के आधार पर योग्य व्यक्तियों को चुन लें। इसी प्रकार वे तर्कबुद्धि से काम ले सकते हैं। जनतंत्र तभी व्यवहार में आ सकता है जब प्रत्येक राज्य को छोटे-छोटे

[श्री लोकनाथ मिश्र]

जनतंत्रात्मक प्रदेशों में विभाजित किया जाये क्योंकि उसके प्राण विभिन्न व्यक्ति नहीं है चाहे व कितने ही महान् क्यों न हों, बल्कि वे छोटे-छोटे लोक-समूह हैं जो पास-पड़ौस की तथा सुपरिचित व्यक्तियों की भावनाओं को व्यक्त कर सकते हैं। मुझे इस पर अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं है। यह महान् सभा, यह विद्वान सभा, यह उत्तरदायी सभा इससे परिचित है और इसकी कल्पना कर सकती है कि प्रौढ़-मताधिकार प्रदान करने पर कैसी स्थिति उत्पन्न होगी। उसका आकार वृहत् है किन्तु उसके लिये न अभी कोई योजना बनाई गई है और न कोई प्रबन्ध किया गया है। उससे हमारा दल सबल हो सकता है परन्तु उससे हम लोगों को शिक्षित बनाने और उस शक्ति और प्राधिकार को प्रदान करने में समर्थ न होंगे जो वास्तव में उनका है अथवा उनका होना चाहिये।

खण्ड (3) के सम्बन्ध में मैं यह कहता हूं कि इससे प्रारम्भिक सदस्यों को यह अधिकार होगा कि उन्होंने संसद के लिये या राज्य की सभा के लिये जो सदस्य निर्वाचित किया हो उसे वे वापस बुला लें—यह बहुत ही आवश्यकीय मूलाधिकार है। हमें यह ज्ञात है कि जब हम सभाओं के लिये निर्वाचित होते हैं तो हम वहां पांच वर्ष के लिये लोगों का प्रतिनिधित्व करने आते हैं। किन्तु हमें वास्तव में चिन्ता होती है दल के अधिकारियों की, सर्वोच्च अधिकारियों की और यदि वे प्रसन्न रहे आते हैं तो हम भी यह समझते हैं कि हम ठीक रीति से कार्य कर रहे हैं। लोगों की चिन्ता हम नहीं करते हैं। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि यदि हमें लोगों के वास्तविक प्रतिनिधि होना है तो हमें सब से प्रथम लोगों की ही चिन्ता होनी चाहिये। वही हमारे स्वामी होने चाहिये। यदि हम उनकी यथेष्ट सेवा कर सकें तो हमें अपने स्थान पर रहना चाहिये, नहीं तो हमें उसे छोड़ देना चाहिये। परन्तु इस समय ऐसा नहीं होता है। इसलिये यह आवश्यक है कि यदि लोगों को सदस्यों को निर्वाचित करने का अधिकार हो तो, यदि वे ठीक कार्य न करें तो उन्हें वापस बुलाने का भी अधिकार उन्हें प्राप्त होना चाहिये। जनतंत्रात्मक व्यवस्था में सदस्यों को वापस बुलाने का अधिकार एक मूलाधिकार है। जब तक हमें यह अधिकार प्राप्त नहीं रहता हम समुचित जनतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित नहीं कर सकते हैं। इसलिये मेरा आपसे यह निवेदन है कि यदि हम लोगों को अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार दें, जो उनके नाम पर शासन करेंगे, तो यदि वे अपने कर्त्तव्य का पालन न करें तो उन्हें वापस बुलाने का भी अधिकार लोगों को प्रदान करें। वास्तव में स्थिति यह है कि हम लोगों की चिन्ता नहीं करते हैं। वास्तव में उच्च पदारूढ़ कोई व्यक्ति यह तय करता है कि कौन से

व्यक्ति चुने जायें। वह कहता है कि अमुक-अमुक व्यक्ति निर्वाचित होना चाहिये और वह निर्वाचित हो जाता हैं इसलिये निर्वाचित लोग इन ऊपर वालों की कृपा के पात्र बने रहना चाहते हैं और नीचे वालों की जरा भी परवाह नहीं करते। यह जनतंत्र की दुर्गति है और मैं तो यह कहूंगा कि हमें इस प्रकार की व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहिये।

खण्ड (4) के सम्बन्ध में मतदाता को निर्वाचनाधिकार प्राप्त होगा और निर्वाचन का खर्च राज्य उठायेगा। मैंने यह इसलिये कहा है कि सभा के लिये निर्वाचित होना कोई पेशा नहीं है और न धन कमाने का कोई व्यवसाय ही है। यदि यह दायित्व राज्य का समझा जाये और यदि जो कोई भी सभा में आये, केवल लोगों की सेवा करने के लिये आये, तो यह आवश्यक है कि उसके निर्वाचन के खर्च को राज्य उठाये। अन्यथा कुछ जमींदार और पूंजीपति एक दल स्थापित करेंगे जो उम्मीदवारों को खड़ा करेगा और वही उम्मीदवार निर्वाचित होंगे। ऐसा कोई आदमी जो गरीब है, अच्छा कार्यकर्त्ता और ईमानदार है, पर जिसके पास न तो धन है और न किसी दल का समर्थन प्राप्त है, वह किसी निर्वाचन के लिये खड़ा नहीं हो सकता। यदि वह खड़ा होता है तो केवल अपना उपहास ही कराता है। यदि आप यह कहते हैं कि निर्वाचन से राज्य का उतना ही हित होता है जितना राष्ट्रपति से अथवा मंत्रियों से अथवा नौकरशाही से तो आपको यह कहना चाहिये कि विधान-मंडल के सदस्यों को भी उसी प्रकार सभा में प्रवेश करना चाहिये जैसे कि वे अस्तित्व में आते हैं अर्थात् राज्य को नियमित रूप से उनके निर्वाचन के खर्च को उठाना चाहिये। इससे अल्पव्ययी और सुसंगठित व्यवस्था स्थापित हो सकेगी। हो सकता है कि कुछ लोग इस सुझाव की हंसी उड़ायें, परन्तु यह व्यवस्था है न्यायपूर्ण। जब तक हम इस प्रकार का कोई प्रावधान न रखेंगे, अगले पन्द्रह या बीस वर्षों तक कोई भी सच्चा, ईमानदार और कर्मठ व्यक्ति निर्वाचित न हो सकेगा। यदि हम इस समय इसे स्थान नहीं देते हैं तो हम केवल क्रांति को आमंत्रित करेंगे। क्रान्ति का अर्थ यह है कि सब कुछ उलट-पुलट जायेगा। यदि हम बुद्धिमत्ता से इसे इस समय स्थान न दे सके तो लोग अग्नि प्रज्जवलित करके इसे स्थान देंगे। इसलिये अपने उद्देश्य तथा न्याय की दृष्टि से निर्वाचन के खर्च को राज्य को ही उठाना चाहिये, क्योंकि वास्तव में निर्वाचन एक राजकीय कार्य है और किसी का अपना निजी कार्य नहीं है। इसके कारण हमें इस समय विचलित न होना चाहिये। हमें ऐसे सदस्यों को न आने देना चाहिये जो लाभ-घाटे का ही हिसाब लगाते हैं और इसका भी हिसाब लगाते रहते हैं कि पांच वर्ष में वे कितना धन-संचय

[श्री लोकनाथ मिश्र]

कर सकेंगे और इसलिये मांग कर, उधार लेकर अथवा चोरी करके उन्हें कितनी पूंजी संसद् के खाते लगानी चाहिये।

***उपाध्यक्षः** श्री मिश्र, आपको अब समाप्त कर देना चाहिये क्योंकि आप दो बार बोल चुके हैं।

***श्री लोकनाथ मिश्रः** अच्छी बात है, श्रीमान्!

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रांत : जनरल): सभापति महोदय, जो संशोधन मेरे मित्र ने उपस्थित किया है, मैं उसका विरोध करता हूं। इसलिये कि एक तो उसका स्थान यहां नहीं है, जहां पर प्रश्न उठाया गया है। चुनाव सम्बन्धी बातें इस विधान में अन्यत्र रखी गयी हैं, जहां पर यह बतलाया गया है कि किस तरह से धारा सभाओं का निर्माण होगा, सदस्य कौन होंगे, उनके अधिकार क्या होंगे, चुनने का तरीका क्या होगा, उन जगहों पर कुछ इस किस्म के संशोधन आ सकते थे। पहली बात तो यह कि इसके मूलाधिकार प्रश्न में इस संशोधन को रखने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है, इसलिये मैं उसका विरोध करता हूं। एक बात।

दूसरे इसमें मेरे मित्र ने यह बतलाया है कि जो लोग इलेक्शन के लिये खड़े हों, उनका खर्चा सरकार को देना चाहिये। उन्होंने यह कहा कि सदस्य बनने के लिये खड़े होने में कोई आदमी व्यापारिक काम नहीं करता है, इसलिये बहुत आवश्यक है कि सरकार इस खर्चे को अपने ऊपर बरदाश्त करे। मेरे लायक दोस्त ने यह ख्याल नहीं किया कि अगर सरकार यह उदारता बरतने लग जाये तो जितने आदमियों का इलेक्टोरल रोल में नाम होगा और जो खड़े हो सकते हैं वह सब खड़े हो जायेंगे और कुछ नहीं तों चकल्लस ही सही। खर्चा सारा का सारा सरकार बरदाश्त करेगी। तब तो दुनिया में कोई ऐसी सरकार नहीं हो सकती, जिसका दिवाला पहले चुनाव में निकल न जाये। हारने, जीतने का गम नहीं, खर्चे का कोई गम नहीं। खड़े होने की सबको रियायत है, जो चाहे खड़ा हो जाये और खर्चा सारे का सारा सरकार बरदाश्त कर लेगी। इस प्रकार की एक योजना पेश करना और उसको बिना समझे-बूझे, उसकी सरगर्मी से ताईद करना कि यह संशोधन बहुत महत्त्वपूर्ण है और डिमोक्रेसी की इससे रक्षा होती है और सारा काम अच्छी तरह से चलता है, अनुचित है और इस संशोधन को बिल्कुल रद्द कर देना चाहिये और स्वीकार न करना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 8 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद 8 (क) प्रविष्ट किया जाये:

'8 (क) (1) Every citizen who is not less than 21 years of age and is not otherwise disqualified under this Constitution or any law made by the Union Parliament or by the Legislature of his State on any ground, e.g., non-residence, unsoundness of mind, crime or corrupt or illegal practice, shall be entitled to be registered as a voter at such elections.

(2) The elections shall be on the basis of adult suffrage as described in the next preceding sub-clause but they may by indirect, i.e., the Poura and Grama Panchayats or a group of villages, a township or a part of it having a particular number of voters or being an autonomous unit of local self government shall be required to elect primary members, who in their turn, shall elect members to the Union Parliament and to the State Assembly.

(3) The Primary members shall have the right to recall the members they elected to the Parliament or the Assembly of the State.

(4) A voter shall have the rights to election and the cost of election shall be met by the State.

(5) Every candidate must be elected by the people and even if there is no rival, no candidate shall be elected unless he gets at least 1/3 of the total votes.' ''

[(1) प्रत्येक नागरिक, जो 21 वर्ष से कम आयु का न हो और इस विधान के अधीन या संधानीय पार्लियामेंट या उसके राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाये हुये किसी कानून के अधीन किसी कारण अर्थात् अनिवास, अस्वस्थ मस्तिष्क, अपराध या भ्रष्ट अथवा अवैध आचरण के कारण अपात्र न हो तो वह इन निर्वाचनों के लिये मतदाता के रूप में अपने नाम की रजिस्टरी कराने का अधिकारी होगा।

[उपाध्यक्ष]

(2) जैसा कि दूसरे पूर्ववर्त्ती उपखंड में वर्णित है, निर्वाचन प्रौढ़-मताधिकार के आधार पर होंगे किन्तु वे व्यवहृत होंगे अर्थात् पुर और ग्राम-पंचायत या ग्रामों का कोई समूह या कोई नगर अथवा उसका कोई भाग, जिसमें किसी विशेष संख्या में मतदाता बसते हों या जो स्थानीय स्वशासन का स्वायत्तशासी प्रदेश हो, प्रारम्भिक सदस्यों को निर्वाचित करेगा और वे संघीय पार्लियामेंट के और राज्य के विधान-मंडल के सदस्यों को निर्वाचित करेंगे।

(3) प्रारम्भिक सदस्यों को यह अधिकार होगा कि वे पार्लियामेंट के लिये अथवा राज्य के विधान-मंडल के लिये अपने निर्वाचित किसी सदस्य को वापस बुला लें।

(4) मतदाता को निर्वाचनाधिकार प्राप्त होगा और निर्वाचन का खर्च राज्य उठायेगा।

(5) प्रत्येक उम्मीदवार लोगों द्वारा निर्वाचित होगा और किसी प्रतिद्वन्द्वी के न होने पर भी यदि किसी उम्मीदवार को कुल वोटों की कम से कम 1/3 वोटें न मिलें तो वह निर्वाचित न होगा।]

प्रस्ताव गिर गया।

अनुच्छेद 9

***उपाध्यक्ष:** सभा के सम्मुख यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 9 विधान का अंग बना लिया जाये।''

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (1) के दूसरे पैरा को नये खंड (1-क) की संख्या दी जाये और इस प्रकार जो नया खंड बने उसमें से 'in particular' (विशेषतया) शब्द निकाल दिये जायें।''

मैंने यह संशोधन इस कारण उपस्थित किया है कि अनुच्छेद 9 वर्तमान रूप में थोड़ा-बहुत भ्रामक है। 9(1) में कहा गया है: ''राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद

नहीं करेगा''। उसमें फिर कहा गया है: ''विशेषतया केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई नागरिक–

(क) दुकानों, सार्वजनिक उपहारगृहों विश्रान्तिगृहों तथा सार्वजनिक आमोद स्थानों में प्रवेश अथवा...इससे यह प्रतीत होता है कि सामान्य खंड में यह कहकर कि राज्य विभेद नहीं करेगा हम 'in particular' (विशेषतया) शब्दों का प्रयोग करके केवल ऐसे उदाहरण देते हैं जब राज्य विभेद नहीं करेगा। वास्तव में यह बात नहीं है। 'in particular' (विशेषतया) शब्दों के बाद उस खंड में दुकान आदि में प्रवेश का उल्लेख है। इनके संबंध में राज्य को विभेद करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। इसलिये इसे एक पृथक खंड होना चाहिये। इसी कारण मैंने यह सुझाव रखा है कि 'in particular' (विशेषतया) शब्दों को निकाल दिया जाये और इसे एक पृथकृ खंड 9(क) बना दिया जाये जो इस प्रकार हो जायेगा:

> ''केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई नागरिक–''

***उपाध्यक्ष:** जिन सदस्य महोदय ने संशोधन संख्या 276 की सूचना दी है वे अब उसके दूसरे भाग को उपस्थित करें, जिसका आशय यह है कि 'discrimination' और 'and public worship' शब्द क्रमश: 'liability' और 'public resort' शब्दों के बाद रखे जायें।

(*संशोधन उपस्थित नहीं किया गया।*)

***उपाध्यक्ष:** आगे के दो संशोधन (277 और 278) शाब्दिक संशोधन हैं और इसलिये उनको उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती। 'class community' (वर्ग या जाति) शब्द मेरे विचार से अनावश्यक है। 'religion' (धर्म) शब्द से इनका बोध हो जाता है।

संशोधन संख्या 282 जो श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका के नाम से हैं एक विस्तृत संशोधन है और उसे अब उपस्थित किया जा सकता है।

चूंकि सदस्य महोदय अनुपस्थित हैं, इसलिये सय्यद अब्दुर रऊफ संशोधन संख्या 280 उपस्थित करें।

***सय्यद अब्दुर रऊफ** (आसाम : मुस्लिम): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 9 में जहां कहीं 'sex' (लिंग) शब्द आये उसके बाद 'place of birth' (जन्म-स्थान) शब्द रखे जायें।''

इसे अनुच्छेद का उद्देश्य यह है कि नागरिकों के प्रति विभेद के बर्ताव को निषिद्ध किया गया जाये। हमने 'धर्म, प्रजाति, जाति अथवा लिंग' के आधार पर विभेद को निषिद्ध किया है। परन्तु श्रीमान्, मुझे इसका भय है कि दुष्ट लोग, जो नागरिकों के प्रति विभेद बरतना चाहेंगे वे धर्म, प्रजाति, जाति अथवा लिंग के आधार पर विभेद न करेंगे। 'धर्म' के आधार पर विभेद बरतना बहुत ही प्रत्यक्ष होगा और उसका कोई भी साहस न करेगा। 'जाति' के सम्बन्ध में भी यही तर्क उपस्थित किया जा सकता है। 'लिंग' के सम्बन्ध में, मेरे विचार से बीसवीं शताब्दी के मध्य में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो इसके आधार पर विभेद करेगा। जो प्राचीन काल में सम्भव था वह अब सम्भव नहीं है। अब हमें इसकी परीक्षा करनी चाहिये कि 'प्रजाति' शब्द से परित्राण मिल सकता है या नहीं। प्रजाति शब्द का विस्तृत अर्थ है और वह आर्य प्रजाति, द्राविड़ प्रजाति, मंगोल प्रजाति आदि के सम्बन्ध में व्यवहार में आता है। यदि कोई व्यक्ति इस कारण विभेद करना चाहे कि कोई सज्जन किसी विशेष प्रान्त का है तो 'प्रजाति' शब्द से उसके मार्ग में कोई बाधा नहीं होती। मेरे विचार से जन्म-स्थान के कारण, स्थानीय देश प्रेम से प्रेरित होकर भी नागरिकों के प्रति विभेद बरतने का प्रयास किया जा सकता है। इस सम्भावना को दूर करने के लिये मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है और मुझे आशा है कि वह स्वीकार कर लिया जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 279 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं देता परन्तु उस पर मत लिया जायेगा। अब हमारे सामने संशोधन संख्या 281 है। मैं इस संशोधन को केवल शाब्दिक संशोधन समझता हूं और इसलिये इसे नियम-विरुद्ध घोषित करता हूं। अब हमारे सामने संशोधन संख्या 283 और 285 हैं। संशोधन संख्या 283 उपस्थित किया जा सकता है। प्रो. के.टी. शाह।

***प्रो. के.टी. शाह:** यह बहुत-कुछ वैसा ही है जैसा कि हाल में उपस्थित किया हुआ संशोधन था। इसकी अधिक चर्चा करके मैं सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता।

(संशोधन संख्या 285, 284, 288 का अंतिम भाग और 291 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** अब हम संशोधन संख्या 286 के पहले भाग को उठाते हैं यह केवल शाब्दिक है और इसलिये इसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती। मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि विस्तृत अर्थपूर्ण शब्द 'religion' को दृष्टि में रखते हुये 'creed' शब्द अनावश्यक है। अब हम संशोधन संख्या 286 के दूसरे भाग को उठाते हैं। संशोधन संख्या 293 से 301 तक और 304, 305, 306 तथा 308 का आशय एक समान है और इसलिये इन पर एक साथ विचार होना चाहिये। मेरे विचार से संशोधन संख्या 293, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है, सब से अधिक विस्तृत संशोधन है। प्रोफेसर शाह!

***प्रो. के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव करता हूं किः

''अनुच्छेद 9 के खंड 1 में उपखंड (क) और (ख) के स्थान में निम्नलिखित रखा जायेः

'any place of public use or resort, maintained wholly or partly out of the revenues of the State, or in any way aided, recognised, encouraged or protected by the State, or place dedicated to the use of general public, like schools, colleges, libraries, temples, hospitals, hotels and restaurants, places of public entertainment, recreation or amusement, like theatres and cinema-houses or concert-halls; public parks, gardens or museums; roads, wells, tanks, or canals; bridges, posts and telegraphs, railways, tramways and bus services; and the like.' ''

(लोक-उपयोग अथवा लोक-समागम को कोई स्थान, जिसका अंशतः अथवा पूर्णतः संधारण राज्य के आगम से होता हो अथवा जिसको राज्य किसी प्रकार सहायता, स्वीकृति, प्रोत्साहन अथवा रक्षण प्रदान करता हो, अथवा जनसाधारण के उपयोग के लिये समर्पित कोई स्थान जैसे स्कूल, कॉलेज, पुस्तकालय, मंदिर, अस्पताल, विश्रान्तिगृह और उपहारगृह, सार्वजनिक, आमोद-प्रमोद तथा मनोविनोद के स्थान जैसे नाट्यशाला और छविगृह अथवा वाद्यशाला सार्वजनिक उद्यान, बगीचे अथवा कौतुकालयः सड़कें, कुंएं, तालाब अथवा नहरें; पुल, डाक और तार, रेल, ट्राम और बस आदि।)

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, इस संशोधन को उपस्थित करते हुए मैं केवल लोक-उपयोग अथवा लोक-समागम के अथवा लोक सेवा के लिये समर्पित ऐसे स्थानों की सूची नहीं दे रहा हूं जिन पर पहले विभेद बरता गया है और विशेष सम्प्रदायों अथवा वर्गों के लोगों को वहां केवल उनकी जाति और जन्म के कारण नहीं आने दिया गया। जिस विधान का आधार सभी नागरिकों की जनतंत्रात्मक समता है, मेरे विचार से उसमें इस प्रकार का विभेद अप्रासंगिक ही न होगा किन्तु अनर्गल भी होगा। इसलिये ऐसे सभी स्थानों में जिनका अंशत: अथवा पूर्णत: संधारण सार्वजनिक प्रणीवि से होता हो अथवा उनको किसी प्रकार राज्य से प्रोत्साहन, सहायता अथवा रक्षण प्राप्त हो, मेरे सुझाव के अनुसार सभी नागरिकों का समान रूप से प्रवेश होना चाहिये चाहे उनकी जाति, लिंग, जन्म आदि किसी प्रकार का क्यों न हो।

स्पष्टत: इस अनुच्छेद का उद्देश्य यही है। मैंने केवल उसे उसकी शब्दावली से अधिक स्पष्ट करने तथा विस्तृत बनाने का प्रयास किया है। इस कारण भी इसका उद्देश्य यही है कि आगे के अनुच्छेदों में कुछ ऐसे अपवाद हैं जिनके कारण कुछ विशेष सम्प्रदायों, वर्गों अथवा समुदायों की संस्थाएं फूलेंगी-फलेंगी ही नहीं बल्कि लोगों का अहित करके फूलेंगी-फलेंगी। मेरे विचार से यदि हम इस प्रकार के पार्थक्य के प्रति सहिष्णुता दिखायेंगे तो हम एक बहुत ही दूषित सिद्धांत का अनुसरण करेंगे जिससे सच्चा जनतंत्र कलंकित हो जायेगा। यदि आपका निश्चित रूप से तथा स्पष्टतया यह उद्देश्य है कि किसी प्रकार के वर्गीय अथवा साम्प्रदायिक पार्थक्य को स्थान न मिले, यदि आपका निश्चित रूप से और स्पष्टतया यह उद्देश्य है कि पाठशालाओं, अस्पतालों अथवा आश्रमों ऐसे जनोपयोगी स्थान किसी कारण किसी विशेष वर्ग या सम्प्रदाय के लोगों के लिये ही सुरक्षित न रहे तो मेरे विचार से यह कोई बहुत बड़ी मांग नहीं है कि ये देश के सभी नागरिकों के लिये खोल दिये जायें। विशेषतया इसलिये कि हमारा पिछला अनुभव बड़ा दु:खद रहा है अर्थात् एक विशेष वर्ग के लोगों को कुंओं से पानी नहीं भरने दिया जाता रहा है, नहरों को विशेष अवसरों और विशेष दशाओं में ही उपयोग में लाने दिया जाता रहा है और सब से दु:खद बात तो यह रही है कि यही दशा पाठशालाओं, अस्पतालों और इस प्रकार की अन्य अत्यन्त जनोपयोगी संस्थाओं की भी रही है। मेरे विचार से यदि इस देश के नागरिकों के बीच वास्तविक समता न हुई तो हम इस विधान के आदर्शों के अनुरूप कार्य न करेंगे।

प्राय: यह बहाना किया जाता है कि अमुक विशेष संस्था अमुक विशेष सम्प्रदाय के किसी दानशील सदस्य के दान से संचालित है अथवा आरम्भ में स्थापित की गई और यह कि संस्था को स्थापित करते समय और उसके लिये पूंजी देते समय उन्होंने प्रन्यास के प्रारम्भिक संलेख में यह प्रतिबंध रखा है कि अमुक-अमुक विशेष सम्प्रदाय अथवा जाति अथवा उपजाति के लोगों को ही उस संस्था से लाभ उठाने दिया जाये। मेरे विचार से इस प्रकार की संस्थाओं को कुछ विशेष सम्प्रदायों के लिये अलग रखना अथवा मुख्यत: उन्हीं के लिये रखना नागरिक दायित्व की उपेक्षा ही नहीं बल्कि नागरिक समता का हनन भी है।

पहले जब देश का शासन विदेशियों के हाथ में था और वे अपना अधिकार सुदृढ़ रखने के लिये जान बूझ कर इस देश की सन्तानों को अलग रखते थे और इसी कारण अपने कृपापात्रों के लिये पृथक् क्लब, अस्पताल, पाठशाला आदि खोलते थे। उस समय तो यह समझ में आ सकता था कि जो लोग कई बातों में उनकी नकल करते थे वे स्वभावत: उनका आदर्श सामने रख कर इस प्रकार की भी व्यवस्था करते थे। अब वह सिद्धान्त, जो सभी प्रकार के पार्थक्य का कारण था, इस देश में कहीं भी नहीं दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त हम नागरिकों की समता के सिद्धान्त को प्रत्यक्षत: स्वीकार ही नहीं कर रहे हैं बल्कि उसके आधार पर अपने विधान का भी निर्माण कर रहे हैं। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि पार्थक्य को किसी प्रकार भी स्थान देने से या उसके लिये अनुमति देने से, चाहे हम सीधे-सीधे यह कहें या विधान में इस प्रकार का प्रावधान प्रविष्ट करें, पार्थक्य की प्रवृत्ति को ही प्रोत्साहन मिलेगा, परन्तु इसे हमें निन्दनीय ठहराना चाहिये और इसलिये इसकी आज्ञा न देनी चाहिये।

हमारे विधान में यह बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहिये कि चूंकि सभी नागरिक एक समान है इसलिये उनकी सार्वजनिक संस्थायें और सार्वजनिक समागम के स्थान देश के सभी नागरिकों के लिये खुले होने चाहियें। यह सम्भव है कि ऐसा कोई दावा किया जाये कि कोई विशेष वर्ग अथवा सम्प्रदाय उसके संधारण के खर्च को पूर्णत: या अंशत: उठाता है। मैंने इस संशोधन को इतना विस्तृत बनाने का प्रयास किया है कि यदि इस प्रकार की कोई संस्था अथवा सार्वजनिक समागम का कोई स्थान केवल किसी विशेष व्यक्ति के दान से स्थापित हुआ हो अथवा उससे उसका संधारण होता है तो यदि उसे किसी सरकारी प्राधिकारी से किसी प्रकार स्वीकृति, रक्षण, अभिरक्षण अथवा प्रोत्साहन प्राप्त है तो वह इस अनुच्छेद की परिधि के अन्दर आ जायेगा और इसलिये सभी लोग वहां समान रूप से प्रवेश कर सकेंगे।

[प्रो. के.टी. शाह]

मेरे विचार से इस प्रकार के प्रावधान से किन्हीं स्थायी स्वार्थों के प्रति अन्याय न होगा। इस कारण भी अन्याय न होगा कि मेरी दृष्टि में तो इस प्रकार के स्थायी स्वार्थों की स्थापना ही आपत्तिजनक है। इन दानशील संस्थापकों को बिना आसानी से अपने लिये अमरत्व प्राप्त करने के साधन से वंचित हुये इसकी भी स्वतंत्रता होगी कि, यदि प्रन्यास का संलेख उनके मार्ग में बाधक हो, तो वे संलेख के प्रतिबंधों को इतना विस्तृत बना दें कि सभी लोग समान रूप से उनकी संस्था से लाभ उठा सकें।

भारत के प्रत्येक नगर में किसी न किसी वर्ग के लिये पृथक् रूप से स्थापित इस प्रकार की संस्थायें हैं। हाल में बम्बई के एक सार्वजनिक अस्पताल में जिसमें केवल संस्थापक के सम्प्रदाय के लोग जा सकते थे एक दु:खद दृश्य उपस्थित हुआ जिसके कारण कुछ क्षेत्रों में बड़ी उत्तेजना फेल गई। अन्य सम्प्रदाय के व्यक्ति की चिकित्सा अस्पताल में न की गई और खुले आम इसका समर्थन इस तर्क से किया गया कि वह एक विशेष वर्ग के लिये स्थापित है और स्पष्ट रूप से यह व्यक्त है और इसलिये अन्य सम्प्रदायों के लोगों को वहां चिकित्सा की सुविधा प्राप्त नहीं हो सकती है।

मेरे विचार से इस देश के किसी घने बसे हुये स्थान के अनुभव के आधार पर इस प्रकार के असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। मेरे संशोधन को स्वीकार करने के लिये यही तर्क सबसे सबल है कि इस प्रकार की घटनायें होती हैं और इस प्रकार की किसी न किसी घटना का इस सभा के लगभग प्रत्येक सदस्य को अनुभव हुआ है और उनको स्मरण है। इसलिये अब किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय या वर्ग को इस प्रकार अधिकृत करने की सम्भावना न रहनी चाहिये कि वह यह कह सके कि अमुक संस्था हमारे ही लाभ के लिये स्थापित है। यदि राज्य से उसे कुछ भी आर्थिक अथवा अन्य, प्रकार की सहायता अथवा प्रोत्साहन अथवा सुरक्षा प्राप्त है, चाहे वह पाठशाला हो, मन्दिर हो, अस्पताल हो, नाट्यशाला हो अथवा उपहार-गृह हो या चाहे और जो कुछ हो। मुझे आशा है कि यह संशोधन सभा को स्वीकार्य होगा और उसमें सन्निहित सिद्धांत को विधान में स्थान दिया जायेगा।

(सूची 1 का संशोधन संख्या 38 तथा संशोधन संख्या 294, 295, 296, 297, 298, 300, 301, 304, 305, 306, 308 और 287 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 288 में, जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है, तीन संशोधन हैं। पहला संशोधन केवल शाब्दिक है और इसलिये उसके लिये आज्ञा नहीं दी जाती। दूसरा और तीसरा संशोधन उसी प्रकार हैं जैसे संशोधन संख्या 278 और 284, इसलिये मैं इनके लिये भी आज्ञा नहीं दे रहा हूं।

(*संशोधन संख्या 292 और 302 उपस्थित नहीं किये गये।*)

***श्री गुप्तनाथ सिंह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं यहां अपने उन माननीय मित्रों का प्रतिद्वन्द्वी होकर नहीं आया हूं जो अप्रासंगिक और बेकार संशोधनों को प्रस्तुत करते हैं, परन्तु मैं यहां...।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, क्या इस सभा में माननीय सदस्य का यह वक्तव्य नियमानुकूल है?

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से अच्छा तो यह होगा कि आप अपना भाषण दें।

***श्री गुप्तनाथ सिंहः** श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद को विस्तृत बनाने के उद्देश्य से इस छोटे से संशोधन को उपस्थित करने के लिये यहां आया हूं। श्रीमान्, आपकी आज्ञा से मैं उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 9 के खण्ड (1) के दूसरे पैरा के उपखंड (ख) में 'wells, tanks' (कुंओं, जलाशयों) शब्दों के बाद 'bathing ghats' (नहान घाट) शब्द रखे जायें।''

मैंने मूल संशोधन से 'kunds' (कुण्ड) शब्द निकाल दिया है और मैं केवल यह चाहता हूं कि यहां 'bathing ghats' (नहान घाट) शब्द रखे जायें।

(*संशोधन संख्या 307 उपस्थित नहीं किया गया।*)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 309 और 322 एक समान हैं। संशोधन संख्या 322 अधिक विस्तृत है। मैं इस संशोधन को यथासमय उपस्थित करने की आज्ञा दूंगा।

[उपाध्यक्ष]

इसके अतिरिक्त संशोधन संख्या 310, 312, 320 और 321 का भी आशय एक समान है। मेरे विचार से इनमें से संशोधन संख्या 310 सबसे अधिक विस्तृत है।

(*संशोधन संख्या 310 उपस्थित नहीं किया गया। संशोधन संख्या 312, 320 और 321, जिनकी सूचना दी गई थी, उपस्थित नहीं किये गये।*)

***उपाध्यक्ष:** इसलिये अब इन संशोधनों का प्रश्न नहीं है। अब हम संशोधन संख्या 311 को उठाते हैं।

(*संशोधन संख्या 311 उपस्थित नहीं किया गया।*)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 313 एक शाब्दिक संशोधन है और इसलिये उसकी आज्ञा नहीं दी जाती। संशोधन संख्या 314, डा. अम्बेडकर।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, क्या मैं पूछ सकता हूं कि क्या यह केवल शाब्दिक संशोधन अथवा अधिक से अधिक एक रस्मी संशोधन नहीं है? इसका उद्देश्य केवल इतना ही है कि 'the revenues of the State (राज्य आगम) शब्दों के स्थान में 'State funds' (राज्य-प्रणीवि) शब्द रखे जायें।

***उपाध्यक्ष:** मैं इसे ध्यान में रखूंगा। डा. अम्बेडकर, कृपा करके इसकी व्याख्या कीजियेगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (1) के दूसरे पैरा के उपखंड (ख) में 'the revenues of the State' (राज्य-आगम) शब्दों के स्थान में 'State funds' (राज्य-प्रणीवि) शब्द रखे जायें।''

जिस कारण मसौदा-समिति ने 'the revenues of the State' (राज्य आगम) शब्दों के स्थान में 'State funds' (राज्य-प्रणीवि) शब्द रखना उचित समझा था, वह बहुत

साधारण है। भारत में जो शासन-शब्दावली बहुत काल से प्रयुक्त रही है उसके अनुसार हम प्रान्तीय सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार का आगम (revenue) कहते हैं जब हम स्थानीय बोर्डों अथवा जिला बोर्डों की चर्चा करते हैं तो हम स्थानीय प्रणीवि (funds) कहते हैं और आगम (revenues) नहीं कहते हैं। भारत के सभी प्रान्तों में यही शब्दावली प्रयुक्त रही है। इस सभा के माननीय सदस्यों को यह स्मरण होगा कि इस भाग में 'State' (राज्य) शब्द से केवल केन्द्रीय सरकार अथवा प्रान्तीय सरकार अथवा भारतीय रियासतें ही अभिप्रेत नहीं है परन्तु स्थानीय जिला बोर्ड या स्थानीय तालुका बोर्ड या पत्तन-प्रन्यास-प्राधिकारी (port trust authorities) के समान स्थानीय प्राधिकारी अभिप्रेत हैं। जहां तक उनका सम्बन्ध है उनके लिये प्रणीवि (funds) शब्द ही उपयुक्त होगा। इसलिये इसे दृष्टि में रखते हुये कि हम इन मूलाधिकारों के कर्त्तव्य के लिये केवल केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों को ही उत्तरदायी नहीं बना रहे हैं बल्कि स्थानीय जिला बोर्डों और स्थानीय तालुका बोर्डों को भी उत्तरदायी बना रहे हैं, हमें विस्तृत शब्दावली प्रयुक्त करनी चाहिये, क्योंकि वह केवल केन्द्रीय सरकार के ही सम्बन्ध में प्रयुक्त नहीं होगी बल्कि उन स्थानीय बोर्डों के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त होगी, जो 'राज्य' शब्द की परिभाषा में सन्निहित है। मुझे आशा है कि मेरे माननीय मित्र श्री कामत अब यह समझेंगे कि जो संशोधन मैंने उपस्थित किया है, वह केवल शाब्दिक नहीं है बल्कि उसमें कुछ सार भी है।

श्रीमान्, मैं उसे उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 314 पर एक संशोधन है। वह सूची 1 का संशोधन संख्या 40 है और पंडित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है। वे यहां उपस्थित नहीं हैं। इसलिये इस विशेष संशोधन के औचित्य पर मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इसके आगे सूची एक का संशोधन संख्या 41 है, जो श्री फूल सिंह के नाम से है। वह भी अनुपस्थित हैं। अब हम संशोधन संख्या 315 पर आते हैं, जो मि. मोहम्मद ताहिर और सय्यद जाफर इमाम के नाम से हैं।

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं आपके ध्यान में यह लाना चाहता हूं कि मेरे नाम से संशोधन संख्या 286 था। हमने उसके सम्बन्ध में अभी कुछ निर्णय नहीं किया है। निस्सन्देह पहले भाग की आज्ञा नहीं दी गई है परन्तु दूसरा भाग अभी शेष है।

***उपाध्यक्षः** मैंने यह कहा था कि उस पर मत लिया जायेगा। इस समय मैं आपको उस पर बोलने की आज्ञा नहीं दे सकता। यदि मैं आपके पक्ष में कोई अपवाद करूंगा तो हर कोई सदस्य उसी प्रकार की मांग करने लगेगा।

परन्तु मेरे विचार से मुझे एक बात स्पष्ट कर देनी चाहिये। इससे माननीय सदस्य, यदि वे सामान्य वादानुवाद के समय बोलने का अवसर पायें तो अपने संशोधन संख्या 286 पर बोलने के अधिकार से वंचित नहीं होते।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्तुत करता हूं कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (1) के उपखंड (ख) में 'State or dedicated to the use of general public' (राज्य-आगम से संधृत अथवा लोक-उपयोग के लिये समर्पित) शब्दों की जगह 'State or any local authority or dedicated to the use of general public and any contravention of this provision shall be an offence punishable in accordance with law.' ''

(राज्य अथवा किसी स्थानीय प्राधिकारी के आगम से संधृत अथवा लोक-उपयोग के लिये समर्पित और इस प्रावधान का उल्लंघन एक अपराध होगा जिसके लिये कानून के अनुसार दंड मिलेगा शब्द रखे जायें।)

श्रीमान्, इस संशोधन के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि जहां तक उसके पहले भाग का अर्थात् 'स्थानीय प्राधिकारी' शब्द जोड़ने का सम्बन्ध है, मैं उस पर जोर नहीं देता हूं क्योंकि 'राज्य' की जो परिभाषा दी गई है उसमें स्थानीय प्राधिकारी भी सम्मिलित हैं। परन्तु जहां तक दंड देने के खंड का सम्बन्ध है, मैं उस पर जोर देता हूं और उसके सम्बन्ध में कुछ शब्द कहूंगा। श्रीमान्, वास्तव में हमारे विधान के इस अनुच्छेद से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमें मनुष्यों की समता का अनुभव करना चाहिये और इसलिये यह आवश्यक है कि इस अनुच्छेद में दंड-संबंधी कोई खंड जोड़ा जाये। आपके सूचनार्थ मैं आपके तथा इस सभा के ध्यान में यह लाना चाहता हूं कि हमारे देश में हम जानते हैं कि कुछ सड़कें ऐसी हैं, जिन पर अनुसूचित जातियों और अन्य नीची जातियों के लोगों को नहीं चलने दिया जाता। हमने यह देखा है कि हमारे देश के कुछ भागों में यदि अनुसूचित जातियों का कोई व्यक्ति कुंएं से पानी लेने जाता है, तो उसे

तुरन्त ही अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ते हैं। हमारे देश के कुछ वर्गों की ऐसी भावनायें हैं और यदि हम सच्चे हृदय से उन लोगों की सहायता करना चाहते हैं, जो अभी तक उपेक्षित रहे हैं, तो मेरा यह निवेदन है कि दंड-सम्बन्धी इस खंड को इस अनुच्छेद के साथ अवश्य ही जोड़ देना चाहिये। इसको दृष्टि में रखते हुये मुझे आशा है कि यह सारी सभा मुझसे सहमत होगी और यदि वह सच्चाई के साथ जनसाधारण की सहायता करना चाहती है तो इस दंड-सम्बन्धी खंड को इस अनुच्छेद में स्थान देगी और इस आशय के मेरे संशोधन को स्वीकार करेगी। इन शब्दों के साथ में अपना संशोधन उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 316 से 319 तक उपस्थित नहीं हो रहे हैं। संशोधन संख्या 328। प्रो. के.टी. शाह!

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्तुत करता हूं कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (2) के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

'or for Scheduled Castes or backward tribes, for their advantage, safeguard or betterment.' ''

(अथवा अनुसूचित जातियों अथवा पिछड़ी हुई जातियों के लिये उनके लाभ, अभिरक्षण अथवा उन्नति के उद्देश्य से।)

यह खंड इस प्रकार है:

''Nothing in this article shall prevent the State from making any special provision for women and children.''

(इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिये कोई विशेष प्रावधान बनाने में बाधा न होगी।)

श्रीमान्, इस अनुच्छेद में और पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद में अन्तर करना आवश्यक है। इस प्रावधान से मैं यह समझता हूं कि स्त्रियों और बालकों के लाभार्थ विभेद किया गया है और मैंने केवल उनके साथ अनुसूचित जातियों और पिछड़ी हुई जातियों को भी रख दिया है। भूतकाल की दु:खद भेंट के फलस्वरूप हमारे समाज के कुछ वर्ग अयोग्यताओं अथवा कठिनाइयों के भागी रहे हैं और इस विभेद का उद्देश्य उनका हितसाधन ही है। मेरे विचार से उनको विशेष प्रकार के व्यवहार की आवश्यकता हो सकती है और यदि उनको आवश्यकता है, तो कुछ काल

[प्रो. के.टी. शाह]

के लिये उनके लिये विशेष सुविधाओं की आज्ञा दी जानी चाहिये ताकि नागरिकों के बीच वास्तविक समता का प्रादुर्भाव हो सके।

समता के आंदोलन के फलस्वरूप स्त्रियों के लिये समान रूप से नागरिकता के तथा अन्य प्रकार के अधिकारों की व्यवस्था तो की गई है परन्तु साथ ही राष्ट्र के अथवा देश के सुदूर हितों को ध्यान में रखते हुये कुछ अपवाद भी किये गये हैं और ऐसे प्रावधान रखे गये हैं जिनके अनुसार स्त्रियों के लिये संकटापन्न कार्य अथवा व्यवसाय में लगना वर्जित है। इससे मेरे विचार से समाज में नागरिकों के नाते उनका स्थान अथवा उनकी नागरिक समता किसी प्रकार न्यून नहीं होती। उसका उद्देश्य उनका रक्षण, अभिरक्षण अथवा साधारणतया उनका हितसाधन ही है ताकि देश के सुदूर हितों की हानि न हो।

अनुसूचित अथवा पिछड़ी हुई जातियों के सम्बन्ध में यह एक खुली हुई बात है कि भूतकाल में उनकी उपेक्षा हुई है और पीछे रहने के कारण वे समान नागरिकों के नाते अपने जीवनोपभोग के अधिकार से वंचित रहे हैं। इसलिये इस प्रस्ताव द्वारा मैंने उन्हें इस उपखंड की परिधि के अन्दर लाने का प्रयास किया है ताकि उनके लाभार्थ यदि कोई विभेद किया जाये, तो उससे यह न समझा जाये कि इस देश के सभी वर्गों के लोगों के बीच समता के आधारभूत सिद्धांतों का हनन होता है। उनको कम से कम कुछ काल के लिये शिक्षा के सम्बन्ध में, सेवायुक्ति के लिये अवसर के सम्बन्ध में तथा अन्य कई बातों के सम्बन्ध में विशेष सुविधा की आवश्यकता है और वह उन्हें दी जानी चाहिये, क्योंकि इस सम्बन्ध में उनकी वर्तमान असमता तथा उनके पीछे रहने के कारण देश के प्रगतिशील विकास के मार्ग में बाधा पड़ती है।

राष्ट्र का कोई वर्ग यदि पीछे रहता है तो वह अवश्य ही अन्य लोगों की प्रगति में बाधा डालता है और इसलिये औचित्य की दृष्टि से ही नहीं बल्कि राष्ट्र के हित से भी हमें उन्हें समयोचित स्तर पर लाने के लिये सुविधायें देनी चाहियें ताकि सभी देशवासियों की समान रूप से उन्नति हो सके।

निस्संदेह मैंने अपने संशोधन में इस विशेष व्यवहार की कालावधि का उल्लेख नहीं किया है। इसे सामयिक परिस्थिति के अनुसार निश्चित किया जा सकता है। मैं केवल आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि हमारे देशवासियों

के ऐसे वर्ग है जिन्हें अपने किसी दोष के कारण नहीं बल्कि परिस्थितिवश विशेष प्रकार के व्यवहार की आवश्यकता है और यदि हमें समता का केवल नाम लेकर अथवा कागज में उसका उल्लेख करके संतुष्ट नहीं होना है और वास्तविक समता प्रदान करनी है, तो हमें इस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहियें। मुझे विश्वास है कि यह संशोधन सभा को स्वीकार्य होगा।

***उपाध्यक्ष:** अब इस अनुच्छेद पर सामान्य विचार-विमर्श हो सकता है। मैं मत्स्य संघ के श्री राजबहादुर से बोलने के लिये कहता हूं।

***श्री राजबहादुर** (संयुक्त राज्य-मत्स्य): उपाध्यक्ष महोदय, आपने आज सभा में यह घोषित किया कि संशोधन संख्या 280, 282 और 279 पर विचार-विमर्श होगा। मैंने उनका दुबारा अध्ययन किया और मुझे एक नया अर्थ प्रतीत हुआ। संशोधन संख्या 280 में, जिसे मेरे मित्र सय्यद अब्दुर रऊफ ने उपस्थित किया है, जन्म-स्थान शब्द प्रयुक्त है, परन्तु जिस संशोधन को श्री प्रभुदयाल उपस्थित करने वाले थे, उसमें 'वंश' शब्द भी प्रयुक्त था। दुर्भाग्यवश श्री प्रभुदयाल अपना संशोधन उपस्थित नहीं कर सके। अनुच्छेद को पढ़ने से भी हमें यह ज्ञात होता है कि यद्यपि अन्य बातों के आधार पर विभेद को समाप्त करने का प्रयास किया गया है, परन्तु वंश के आधार पर जो विभेद है अथवा परिवार और वंश के कारण जो विशेषाधिकार प्राप्त है, उनके आधार पर जो विभेद है उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। इसलिये संशोधन संख्या 280 पर मैं इस संशोधन का सुझाव करता हूं कि 280वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद में जिन शब्दों को स्थान देने का प्रस्ताव है उनमें से 'place of' (स्थान) शब्द निकाल दिये जाये। यह स्पष्ट है कि 'birth' (वर्थ) शब्द के पहले 'Place of' (प्लेस आफ) शब्द आने से सारे संशोधन का अर्थ केवल 'place of birth' (जन्म-स्थान) तक ही सीमित हो गया है। इसलिये यदि 'place of' (स्थान) शब्दों को निकाल दिया जाये तो हम दो उद्देश्यों की पूर्ति कर सकेंगे। पहले तो इस उद्देश्य की कि सारे अनुच्छेद के प्रसंग में 'birth' (जन्म) शब्द जहां कहीं आयेगा उससे केवल निवास स्थान का ही बोध नहीं होगा बल्कि 'वंश' का भी बोध होगा और इस प्रकार संशोधन संख्या 282 के प्रस्तावक महोदय के उद्देश्य की पूर्ति हो जायेगी।

***उपाध्यक्ष:** मैंने यह कहा था कि इस समय सामान्य रूप से विचार-विमर्श होगा परन्तु आप अपने संशोधनों को उपस्थित कर रहे हैं मैं इसके लिये आज्ञा नहीं

[उपाध्यक्ष]

दे सकता। आप पूरे खण्ड पर बोल सकते हैं और उस समय प्रसंगवश अपने संशोधनों की ओर संकेत कर सकते हैं। यदि मैं आपसे अपनी इच्छानुसार अनुच्छेद पर सामान्य रूप से बोलने के लिये कहूं, तो आप मुझे क्षमा करेंगे।

***श्री राजबहादुरः** बहुत अच्छा, श्रीमान्! मेरी दृष्टि तो इस ओर जाती है। हमने पहले भी और इस समय भी यह देखा है कि पदों के वितरण के सम्बन्ध में, सरकारी नौकरियों के संबंध में और सम्पत्ति के आधार पर विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में तथा अन्य बातों के संबंध में वंश के कारण अथवा परिवार के स्थान के कारण अथवा इसी प्रकार की अन्य बातों के कारण विभेद किया गया है। मेरा यह नम्र निवेदन है कि इस समय जब कि हम अपना विधान बना रहे हैं हमें केवल धर्म, जाति, लिंग इत्यादि के आधार पर होने वाले विभेद को ही न मिटाना चाहिये बल्कि परिवार और वंश के आधार पर होने वाले विभेद को भी मिटा देना चाहिये। मैं यह स्वीकार करता हूं कि संशोधन संख्या 280 में जो विचार सन्निहित है और उसका जो उद्देश्य है उसकी पूर्ति अवश्य ही होनी चाहियें, परन्तु साथ ही मेरा यह सुझाव है कि इस अनुच्छेद में कुछ ऐसे शब्द जोड़ देने चाहियें, जिनसे जन्म अथवा वंश के आधार पर किसी प्रकार के विभेद अथवा पक्षपात की सम्भावना ही न रह जाये। हम सभी का यह अनुभव है और हमारी यह शिकायत भी है कि पदों के वितरण के सम्बन्ध में और सरकारी नियुक्तियों अथवा सेवाओं के संबंध में जन्म और वंश के आधार पर कुछ विभेद किया जाता है। आकाश-सेना के लिये जो नियुक्तियां होती हैं उनमें तथा थल-सेना के लिये जो नियुक्तियां होती हैं, कुछ सीमा तक उनमें तथा अन्य सरकारी सेवाओं में भी हम इस प्रकार के विभेद को देखते हैं। हमारी यह शिकायत है कि जिन लोगों का समाज में ऊंचा स्थान है और जिनका जन्म सुसम्पन्न घरों में होता है, उनको उन लोगों से अच्छे अवसर प्राप्त होते हैं, जो देहात में मिट्टी की झोंपड़ियों में जन्म लेते हैं।

विधान में इस आशय का एक प्रावधान रखा जाने वाला है कि राज्यों में और राज्य-संघों में राजप्रमुख होंगे और गवर्नर नहीं होंगे। इस सम्बन्ध में भी हम देखते हैं कि जन्म अथवा वंश के आधार पर अथवा इस आधार पर विभेद होगा कि कोई नरेश है या नहीं अथवा राज-वंश का है या नहीं। इस प्रकार के विभेद को भी मिटा देना चाहिये। वास्तव में सभी प्रकार के विभेदों को मिटा देना चाहिये।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस सारे खंड से विशेषत: उस वर्ग को स्वाधीनता प्राप्त होती है, जिनकी ओर इस संशोधन का लक्ष्य है। मेरे विचार से आपको यह विदित ही है कि महात्मा गांधी के नेतृत्व में जो कठिन परिश्रम तथा जो संघर्ष किया गया था उसके फलस्वरूप राजनैतिक दृष्टि से देश आज स्वतंत्र हो गया है। परन्तु जनसाधारण का यह विशेष वर्ग दो प्रकार से स्वतंत्र हो गया है। उसे केवल राजनैतिक स्वतंत्रता ही प्राप्त नहीं है बल्कि सामाजिक स्वतंत्रता भी प्राप्त है। मुझे आशा है कि माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू, जो महात्मा गांधी के सच्चे उत्तराधिकारी हैं, ऐसी व्यवस्था करेंगे जिससे इस वर्ग को आर्थिक स्वतंत्रता तथा समुन्नत स्थान प्राप्त हो सके। स्वतंत्रता का अर्थ है राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता। स्वतंत्रता के दो अंग तो इस विशेष संशोधन में सन्निहित हैं और यह गांधी जी के ही प्रयत्नों का फल है जिन्होंने एक सामाजिक क्रांति का सृजन किया था।

यदि यह खंड, जो इस विशेष सम्प्रदाय को सामाजिक अधिकार प्रदान करता है, अधिक विस्तृत और व्याख्यात्मक होता तो मुझे और भी हर्ष होता। उदाहरण के लिये दुकानों में प्रवेश के प्रश्न को ही लीजिये। दुकानों से ऐसे स्थानों का बोध होता है जहां आप मूल्य चुका कर चीजें खरीद सकते हैं। परंतु ऐसे भी स्थान हैं जहां आप मूल्य चुका कर सेवा भी प्राप्त कर सकते हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि 'दुकान' शब्द से इन जगहों का भी बोध होता है या नहीं। यदि मैं नाई की दुकान में या हजामत की दुकान में जाता हूं तो मैं कोई खास चीज नहीं खरीदता किन्तु मैं श्रम खरीदता हूं। इसी प्रकार धोबी की दुकान भी है। वहां मैं धोबी के श्रम को खरीदता हूं। मैं माननीय प्रस्तावक महोदय से यह जानना चाहता हूं कि क्या 'दुकान' शब्द में धोबी की दुकान और नाई की दुकान जैसे स्थान भी सन्निहित हैं?

मैं अब खंड (ख) पर आता हूं जिसमें राज्य-आगम से पूर्णत: अथवा अंशत: संधृत लोक-समागम के स्थानों का उल्लेख है। परन्तु उन स्थानों का क्या होगा जो पूर्णत: अथवा अंशत: राज्य-आगम से संधृत नहीं हैं? मेरी यह प्रार्थना है कि 'पूर्णत: अथवा अंशत: राज्य-आगम से संधृत' शब्दों को निकाल दिया जाये। इससे खंड का स्वरूप अच्छा हो जायेगा। चाहे कुछ भी हो, मैं चाहता हूं कि प्रस्तावक महोदय इसकी व्याख्या करें कि इस खंड से कौन से स्थान लक्षित हैं। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि सन् 1932 से लेकर सन् 1948 तक केवल 16 वर्षों में ही महात्मा गांधी ने एक ऐसी सामाजिक क्रांति कर दी कि युग-युगान्तर की निर्योग्यताएं

[श्री एस. नागप्पा]

तथा उत्पीड़न समाप्त हो गया। मुझे इसका विश्वास है कि अब, विशेषतया इस प्रकार के प्रावधान के होते हुये, इस सुधार-कार्य को आगे बढ़ाने में अधिक समय नहीं लगेगा। मुझे आशा है कि प्रान्तों के प्रधान मंत्री इस विशेष प्रावधान की ओर ध्यान देंगे और इस अधिनियम के स्वीकार होने के पूर्व ही अवशिष्ट निर्योग्यताओं को भी समाप्त कर देंगे।

स्वतंत्रता के तीसरे अंग अर्थात् आर्थिक स्वतंत्रता को अभी हमने प्राप्त करना है और मुझे आशा है कि हमारे प्रधानमंत्री पद दलित वर्गों के आर्थिक उत्थान की समुचित व्यवस्था करेंगे। मैं इस खंड का हृदय से समर्थन करता हूं और साथ ही प्रस्तावक महोदय से इसे स्पष्ट करने की प्रार्थना करता हूं कि दुकान शब्द में वे स्थान भी सन्निहित हैं या नहीं, जिनकी ओर मैंने संकेत किया है और यह कि लोक-समागम के स्थानों में कब्रिस्तान और श्मशान घाट जैसे स्थान भी सन्निहित हैं या नहीं। इनका संधारण लोक-आगम से अथवा सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा नहीं होता है बल्कि धार्मिक संस्थाओं द्वारा होता है। मैं यह जानना चाहता हूं कि देश की इन अभागी सन्तानों के लिये क्या पृथक कब्रिस्तान और श्मशान बनेंगे अथवा इस खंड में सभी बातें आ जाती हैं, मैंने इन प्रश्नों को इसलिये उठाया है कि वे इस सभा की कार्यवाही की पुस्तकों में स्थान पा सकें और उपयोगी सिद्ध हो सकें, ताकि कोई वकील किसी न्यायालय में इस खंड की गलत व्याख्या न कर सके। हमारे अधिकांश न्यायालय कानून के आलय हैं और वास्तविक अर्थ में न्यायालय नहीं हैं। हमें इस खंड को इस प्रकार बनाना चाहिये कि कोई त्रुटि रह न जाये। मैं यह जानना चाहता हूं कि माननीय प्रस्तावक महोदय ने प्रश्न के इस अंग पर विचार किया है या नहीं। यदि वे इन शब्दों को स्थान दे सकें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। यदि वे यहां आकर यह भी स्पष्ट कर दें कि इन निर्योग्यताओं का निराकरण हो गया है तो मुझे संतोष हो जायेगा। कम से कम इसका इस सभा की कार्यवाही के प्रतिवेदनों में उल्लेख होगा जिससे वे वकील जो गलत व्याख्या करने का प्रयास करेंगे...।

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर): श्रीमान्, मुझे माननीय सदस्य के वकीलों के सम्बन्ध में इस कथन पर आपत्ति हैं कि वकीलों को गलत व्याख्या करने की आदत होती है।

***उपाध्यक्ष:** मैं श्री नागप्पा से कहता हूं कि वे माननीय सदस्य को उत्तर देने का प्रयास न करें।

***श्री एस. नागप्पा:** मैं वकीलों के प्रति अपशब्द नहीं कह रहा हूं। मैं केवल यह कह रहा हूं कि वे क्या कर रहे हैं...।

***श्री के. हनुमन्थय्या:** यह और भी अनुचित है।

***उपाध्यक्ष:** श्री नागप्पा मेरी प्रार्थना की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं।

***श्री एस. नागप्पा:** कुंओं और जलाशयों के अतिरिक्त अन्य स्थानों से भी पानी खींचा जा सकता है मैं इस सम्बन्ध में माननीय सदस्य से पूर्णत: स्पष्टीकरण चाहता हूं।

सरदार भूपेन्द्रसिंह मान (पूर्वी पंजाब : सिख): साहिबे सदर, मैं महसूस करता हूं कि यह बुनियादी हक जो कि दिये जा रहे हैं, वह अधूरे ही रह जाते हैं अगर इसमें जो प्लेसेज आफ वर्शिप ही शामिल न हों। अक्सर हिन्दुस्तानी जिन्दगी में देखा गया है कि ऐसे मंदिरों और पूजा और प्रस्तिश की जगहें जो कि आम जनता के लिये होती हैं लेकिन फिर भी पुजारी बाज आ उनके दरवाजे पब्लिक के बाज हिस्सों के लिये बन्द कर देते हैं। यह एक तारीक पहलू है और ऐसा करने से वह जगहें जो कि मुहब्बत और प्यार का मरकज़ होना चाहिये, नफरत ओर फिरकापरस्ती का अखाड़ा बनकर रह जाती हैं और एक दूसरे के खिलाफ खूब नफरत का प्रचार होता है। देश-पिता का सबसे बड़ा अहम काम यह था कि उन्होंने मन्दिरों के दरवाजे अछूतों पर खोल दिये थे। आज हमें उनकी आशाओं को पूरा करना है। यह दलील दी जा सकती है कि मन्दिर और दूसरी ऐसी जगहों पर ऐसे इन्सानों को अन्दर जाने की इजाजत नहीं दी जा सकती है जिन्हें उनका पूरा उसूल और एहतराम नहीं करना आता हो, तो मैं कहता हूं कि अगर कोई ऐसा इन्सान किसी मंदिर में जाना चाहे तो उसका ख्याल रखा जाये, लेकिन कोई वजह नहीं मालूम होती कि एक इंसान को इसकी इजाजत दी जाये और दूसरे के ऊपर खुदा के दरवाजे बन्द कर दिये जाये। मैं चाहता हूं कि यह नामुकम्मिल पहलू है, इसको पूरा कर दिया जाये और हिन्दुस्तान के माथे पर से यह बदनामी हटा दी जाये और मज़हबियत की जो दीवारें हिन्दुस्तान में एक को दूसरे से जुदा किये हुये हैं, हमको उन्हें उखाड़ना ही होगा। इस ख्याल से मैं यह चाहता हूं कि यह जो उनताई इसमें रखी गई हैं, वह मुकम्मिल कर दी जाये और प्रो. के.टी. शाह का या 296 और 297 अमेंडमेंट है, उसको मंजूर करते हुये इसको पूरा करा दिया जाये।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, यह अनुच्छेद इस प्रकार है:

'The State shall not discriminate against any citizen on grounds only of 'religion' race, caste, sex or any of them.

In particular, no citizen shall, on grounds only of religion race, caste, sex or any of them, be subject to any disability, liability, restriction or condiion with regard to–

(a) access to shops, public restaurants, hotels and places of public entertainment''

[राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

विशेषतया केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा इनमे से किसी के आधार पर कोई नागरिक—

(क) दुकानों, सार्वजनिक उपहारगृहों, विश्रान्तिगृहों तथा सार्वजनिक आमोद-स्थानों में प्रवेश...।

सम्बन्धी किसी भी अयोग्यता, देयता, आयंत्रण अथवा प्रतिबंध के अधीन न होगा।]

इस सम्बन्ध में मेरा इस आशय का संशोधन था कि 'hotels' (विश्रान्तिगृहों) शब्द के बाद ''Dharamshalas, Musafirkhanas'' (धर्मशालाओं, मुसाफिरखानों) शब्द रखे जायें। श्रीमान्, हम यह देखते हैं कि देश में इन दो प्रकार की संस्थाओं का बराबर निजी प्रणीवि द्वारा संधारण होता है। यदि कोई यात्री, जिसे विश्रान्ति-स्थान की आवश्यकता हो, अनुसूचित जाति का अथवा किसी ऐसी जाति का हो जिसे धर्मशाला के प्रबंध पसंद न करें तो उसे धर्मशाला में नहीं टिकने दिया जाता। मुसाफिरखानों के संबंध में भी यही बात है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि 'hotels' (विश्रान्तिगृहों) शब्द के बाद 'Dharamshalas, Musafirkhanas' (धर्मशालाओं, मुसाफिरखानों) शब्द जोड़ दिये जायें।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, इस अनुच्छेद को इस रूप में न रखना चाहिये था। मेरी इच्छानुसार तो इस खंड की प्रथम

तीन पंक्तियां ही मसौदे में रहनी चाहिये थी और अन्य पंक्तियां न रहनी चाहिये थी। ''The State shall not disriminate against any citizen on grounds only of religion, race, caste, sex or any of them,' (राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।) शब्द पर्याप्त हैं। उपखंडों को जोड़ कर वास्तव में हम प्रथम खंड की व्यापकता का नूयनन कर रहे हैं। मेरा अपना यह विचार है कि अनुच्छेद 11 में अस्पृश्ता का अन्त करने के उपरांत इस उपखंड में जलाशयों, कुंओं और सड़कों आदि के संबंध में निर्योग्यताओं का निराकरण अनावश्यक है। जहां तक अस्पृश्यता से उद्भूत निर्योग्यताओं का संबंध है, अब उन्हें कोई व्यक्ति व्यवहार में न ला सकेगा। अनुच्छेद 11 के अधीन कोई व्यक्ति किसी के विरुद्ध अस्पृश्यता के आधार पर विभेद न कर सकेगा क्योंकि इसे कानून के अधीन दंडनीय बना दिया गया है। मेरा अपना यह विचार है कि कुंओं, जलाशयों, सड़कों इत्यादि के संबंध में जो खंड है वह हमारे विधान में स्थान पाने के योग्य नहीं है क्योंकि वर्तमान निर्योग्यतायें अस्थायी हैं और कुछ समय के उपरांत लुप्त हो जायेंगी। परन्तु यदि इसे हमारे विधान में स्थायी रूप से स्थान दिया गया तो अन्य देशों के लोग हमारे यहां पहले इस प्रकार का विभेद रहने के कारण हमें घृणा की दृष्टि से देखेंगे। अनुच्छेद 11 की शब्दावली काफी विस्तृत है। इसलिये यदि अस्पृश्यता के आधार पर कोई विभेद किया गया तो वह निषिद्ध समझा जायेगा। इसलिये मेरे विचार से ये उपखंड अनावश्यक है और यदि हम इस अनुच्छेद में पहली तीन पंक्तियां ही रखते तो ये सब संशोधन उपस्थित नहीं किये जाते। मैं इस अनुच्छेद के क्रांतिपूर्ण आशय की ओर भी संकेत करना चाहता हूं। मुझे यह विदित है कि हिन्दुओं की सैकड़ों ऐसी दुकानें हैं जहां केवल हिन्दुओं को भोजन मिल सकता है। भोजन के संबंध में हिन्दुओं की विशेष प्रकार की आदतें हैं और साधारणतया जहां वे भोजन करते हैं वहां किसी को आने की आज्ञा नहीं होती। मुझे आशा है कि हिन्दू समाज अब वह अनुभव करेगा कि उनको अपनी पुरानी आदतें छोड़नी है क्योंकि अब जिन दुकानों में अथवा भोजनालयों में केवल हिन्दुओं को भोजन मिलता रहा है अब अन्य लोग भी, जो हिन्दू नहीं हैं, आ सकते हैं। मेरे विचार से यह एक बहुत ही गम्भीर विषय है क्योंकि अब प्रत्येक नागरिक को यह मूलाधिकार प्राप्त होगा कि वह हिन्दुओं के किसी भी विश्रान्ति-गृह में प्रवेश कर सकेगा। अब कोई भी व्यक्ति ऐसे स्थान में प्रवेश कर सकता है जहां खाना बिकता हो। इसलिये मेरे विचार से इस व्यापक परिवर्तन को प्रभाव में लाने के लिये हमें लोगों को तैयार करना चाहिये, अन्यथा आये दिन कलह होगा। मेरी तो यह इच्छा है कि

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

इस खंड (क) को राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांतों में समाविष्ट किया जाये और इसे मूलाधिकार का रूप न दिया जाये। इससे हिन्दू समाज की परिस्थिति की आवश्यकताओं के अनुसार तैयार करने का समय मिल जायेगा। इस अनुच्छेद का यह भाग विशेषतया इसलिये अनावश्यक है कि अनुच्छेद 11 में अस्पृश्यता को निषिद्ध कर दिया गया है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस उपखंड को अर्थात् अनुच्छेद 9 के उपखंड (ख) को एक महत्त्वपूर्ण खंड समझता हूं। मेरे विचार से इस खंड के अधीन 'लोक-समागम के स्थानों में आमोद-स्थान आदि सन्निहित हैं और इसलिये नाट्यशाला, छबिगृह आदि सभी प्रकार के स्थानों का उल्लेख करना अनावश्यक है। मेरी समझ से तो 'लोक-समागम के स्थान' शब्द से उद्यान् आदि जैसे सभी प्रकार के स्थानों का बोध हो जाता है। यह भी सुझाव रखा गया है कि इस खंड में 'उपासना के स्थानों' का भी समावेश होना चाहिये। अब तक इस देश में कई धर्म हैं, मेरे विचार से इन शब्दों को इस खंड में स्थान देना उचित न होगा। यह तभी हो सकता है, जब इस देश में हम सभी का एक ही धर्म हो जायें।

परन्तु इस अनुच्छेद के प्रस्तावक महोदय का ध्यान मैं एक बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। इसमें 'कुओं, जलाशयों, सड़कों तथा लोक-समागम के स्थानों का उपयोग' शब्द प्रयुक्त हैं। साधारणतया हमें 'public' (लोक) शब्द से प्रत्येक व्यक्ति अथवा सभी सम्प्रदायों के लोगों के समूह का बोध होता है चाहे उनका कोई भी वर्ग अथवा धर्म हो। परन्तु भारतीय दंड संहिता में मैंने देखा है कि 'public' (लोक) शब्द सीमित अर्थ में प्रयुक्त है। भारतीय दंड संहिता की धारा 12 में यह कहा गया है कि 'public' (लोक) शब्द में 'लोगों का प्रत्येक वर्ग अथवा सम्प्रदाय' सन्निहित है। 'लोगों के प्रत्येक वर्ग' का अर्थ यह है कि एक सनातनी सम्प्रदाय के एक वर्ग का होगा। 'public' (लोक) शब्द की ऐसी सीमित परिभाषा की गई है कि यदि कोई सनातनी किसी गांव में कोई कुंआ बनाये तो वह उसे अनुसूचित जाति के किसी व्यक्ति अथवा सुधारक को उपयोग में न लाने देगा। मुझे ज्ञात नहीं है कि माननीय प्रस्तावक महोदय का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है या नहीं। मैं केवल एक सम्प्रदाय का एक उदाहरण दे रहा हूं। कोई हिन्दू किसी मुसलमान को कुंए से पानी नहीं लेने देगा और यही मुसलमानों के लिये

भी कहा जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि इन बातों का संबंध उन अपराधों से है जो भारतीय दंड संहिता के अधीन आते हैं। परन्तु भारतीय दंड-संहिता अन्य कई प्रकार के अपराधों से भी संबंध रखती है। मुझे ज्ञात नहीं है कि किसी अन्य अधिनियम में 'public' (लोक) शब्द की बिना किसी वर्ग अथवा सम्प्रदाय की ओर संकेत किये हुये समूह को लक्ष्य करके परिभाषा की गई है या नहीं। मैंने एक संशोधन भी प्रस्तुत किया था और मेरी यह इच्छा है कि इस सम्बन्ध में कोई अर्थभ्रम न होने दिया जाये क्योंकि यह एक आधारभूत बात है और इस के आधार पर हम प्रत्येक नागरिक के अधिकारों की रक्षा करने जा रहे हैं मूलाधिकारों का किसी प्रकार खंडन होने पर कोई भी व्यक्ति न्यायालय के सम्मुख उपस्थित हो सकता है। हम इसे भ्रमपूर्ण क्यों रहने दें और लोगों को 'public' (लोक) शब्द की परिभाषा के लिये सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख जाने के लिये क्यों बाध्य करें? हम इसे पूर्णतया स्पष्ट करने के लिये इसी स्थान पर यह क्यों न कह दें कि 'public' (लोक) शब्द में प्रत्येक व्यक्ति सन्निहित है चाहे उसका धर्म और जाति कुछ भी हो, विशेषतया जब कि भारतीय दंड संहिता में सीमित परिभाषा दी हुई है? इसलिये कानूनी पंडितों के ज्ञान के प्रति आदर-भाव रखते हुये, मेरा यह निवेदन है कि इस विषय को स्पष्ट कर देना चाहिये। मेरे लिये और प्रत्येक साधारण व्यक्ति के लिये 'public' (लोक) शब्द का अर्थ स्पष्ट है परन्तु हम यह देखते हैं कि कानून की किताबों में इसका दूसरा अर्थ है। इसलिये भविष्य में किसी प्रकार की पेचीदगी पैदा न होने देने के लिये इसके स्पष्टीकरण की आवाश्यकता है।

(*एक-दो सदस्य बोलने के उद्देश्य से उठे।*)

***उपाध्यक्ष:** यदि मैं सभी माननीय सदस्यों की इच्छा पूरी न कर सकूं तो आप मुझे क्षमा करेंगे। मैं चाहता हूं कि सभा मेरे साथ पूर्ण रूप से सहयोग करे और इस समय मैं इसके लिये विशेष रूप से कहता हूं। डा. अम्बेडकर!

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनके सम्बन्ध में मि. रऊफ द्वारा प्रस्तुत संशोधन संख्या 280 को स्वीकार करता हूं।

***रायबहादुर श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): क्या माननीय सदस्य महोदय उन संशोधनों के सम्बन्ध में भी अपने विचार व्यक्त करेंगे जो उपस्थित नहीं किये गये हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे इसका खेद है कि मैं उन संशोधनों के संबंध में अपना मत व्यक्त नहीं कर सकता जो उपस्थित नहीं किये गये हैं।

***रायबहादुर श्यामानन्दन सहायः** इसके लिये संबंधित सदस्य दोषी नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इस संबंध में मैं क्या कर सकता हूं। 'जन्म-स्थान' शब्द जोड़ने के संबंध में मि. रऊफ का जो संशोधन है उसे मैं स्वीकार करता हूं। मैं श्री सुब्रह्मण्यम् के संशोधन संख्या 276 (सूची 1 में संख्या 37) को भी स्वीकार करता हूं जिसका आशय यह है कि अनुच्छेद 9 के खंड (1) में से 'in particular' (विशेषतया) शब्द निकाल दिये जायें।

श्री गुप्तनाथ सिंह द्वारा प्रस्तुत संशोधन संख्या 303 के संबंध में यदि वे उसमें से 'kunds' (कुंड) शब्द निकालने के लिये तैयार हैं, तो मैं उसे स्वीकार कर सकता हूं।

***श्री गुप्तनाथ सिंहः** श्रीमान्, मैं उसे निकाल चुका हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे खेद है कि जितने संशोधन उपस्थित किये गये हैं उन सबको मैं स्वीकार नहीं कर सकता, परन्तु मैं समझता हूं कि उनमें से दो के बारे में मेरे लिये कुछ कहना आवश्यक हैं उन में से एक संशोधन संख्या 315 है जिसे मि. ताहिर ने उपस्थित किया था जिसका उद्देश्य यह है कि अनुच्छेद 9 के प्रावधानों का किसी प्रकार भी उल्लंघन कानून के अधीन दंडनीय बना दिया जाये। इस संशोधन के प्रस्तावक मेरे मित्र मि. ताहिर ने अछूतों की स्थिति की ओर विशेष रूप से संकेत किया और यह कहा कि इन कार्यों के सबंध में जो अछूतों के लिये जनसाधारण के साथ समान रूप से अपने अधिकारों का उपभोग करने में बाधक हैं हम उस समय तक अपने उद्देश्य की पूर्ति न कर सकेंगे जब तक कि हम इन कार्यों को, जिनके फलस्वरूप अछूत लोक-समागम के स्थानों का उपयोग नहीं कर सकते हैं, अपराध न घोषित करें। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस विषय के संबंध में उनके और इस सभा के अन्य सदस्यों के बीच कोई मतभेद नहीं है क्योंकि हम सभी की यह इच्छा है कि इस अभागे वर्ग को अवाध रूप से वही अधिकार प्राप्त हों जो अन्य सम्प्रदायों के लोगों को प्राप्त हैं। परन्तु वे देखेंगे कि अनुच्छेद 11 के प्रावधानों से जिनमें अस्पृश्यता का

विशेष रूप से उल्लेख है, इस उद्देश्य की पूर्णतया पूर्त्ति हो जाती है। बिना संसद अथवा राज्य के ऊपर इसे अपराध घोषित करने का भार डाले हुये अनुच्छेद ही में यह कह दिया गया है कि इस वर्ग के अधिकारों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप अपराध समझा जायेगा और यह कानून के अधीन दंडनीय होगा। यदि उनकी यह धारणा है कि विधान में एक ऐसा प्रावधान होना चाहिये जिसमें साधारणतया उन कार्यों का उल्लेख हो जिनसे अनुच्छेद 9 के प्रावधानों का खंडन होता हो, तो मैं उनका ध्यान इस विधान के अनुच्छेद 227 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जिसके अनुसार संसद पर इसका भार है कि वह ऐसे कानून बनाये जो यह घोषित करें कि इस प्रकार का हस्तक्षेप अपराध है जो कानून के अधीन दंडनीय है। संसद को यह शक्ति इस कारण दी गई है क्योंकि यह समझा गया कि मूलाधिकारों के संबंध में जो अपराध हो वह भारत के सारे राज्य-क्षेत्र में समान रूप से दंडनीय हो। परन्तु यदि यह शक्ति विभिन्न राज्यों और प्रान्तों को दे दी जायेगी तो हमारे उद्देश्य की पूर्ति न होगी क्योंकि वे अपनी इच्छानुसार कानून बनायेंगे। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि जहां तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है, इसके लिये विधान में पर्याप्त प्रावधान है और वास्तव में और किसी बात की आवश्यकता नहीं है।

प्रो. के.टी. शाह द्वारा प्रस्तुत संशोधन संख्या 323 के संबंध में, जिसका उद्देश्य यह है कि स्त्रियों और बच्चों के साथ 'अनुसूचित जातियां' और 'अनुसूचित वन-जातियां' शब्द जोड़ दिये जायें, मेरे विचार से इसका विपरीत ही प्रभाव होगा। हम सभी का उद्देश्य यह है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित वन जातियों को जनसाधारण से पृथक् न रखा जाये। उदाहरणार्थ हम में से, मेरे विचार से, कोई यह न चाहेगा कि जब गांव में सभी लोगों के लिये एक पाठशाला है, तो अनुसूचित जातियों के लिये एक पृथक् पाठशाला खोली जाये। यदि ये शब्द जोड़ दिये जायेंगे तो सम्भवत: किसी राज्य के लिये यह कहने को हो जायेगा कि वह अनुसूचित जातियों के लिये विशेष रूप से व्यवस्था कर रहा है। मेरे विचार से यदि प्रोफेसर महोदय के संशोधन के अनुसार इस अनुच्छेद में परिवर्तन किया गया, तो वह अवश्य ही यह कह सकेगा। इसलिये मेरे विचार से यह संशोधन हमारे उद्देश्य के अनुकूल नहीं है।

अब मैं अपने मित्र श्री नागप्पा के प्रश्न को उठाता हूं। उन्होंने मुझसे इस अनुच्छेद में आये हुए कुछ शब्दों को स्पष्ट करने को कहा है। उनका पहला प्रश्न यह था कि क्या 'दुकान' शब्द में धोबी की दुकान और नाई की दुकान भी सन्निहित

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

है अथवा नहीं। जहां तक मेरा संबंध है मुझे तो इसके बारे में कुछ भी संदेह नहीं है कि 'दुकान' शब्द में धोबी की दुकान और नाई की दुकान सन्निहित है। यदि 'दुकान' शब्द की अधिक से अधिक सामान्य रूप से परिभाषा की जाये तो वह यही हो सकती है कि दुकान एक ऐसी जगह है जिसका स्वामी वहां आये हुये प्रत्येक व्यक्ति की सेवा करने के लिये तैयार रहे। इसलिये धोबी को एक ऐसा व्यक्ति कहा जा सकता है, जो लोगों की एक विशेष प्रकार की सेवा करने के लिये अपनी दुकान में बैठा रहे अर्थात् उसकी सेवा यही है कि वह अपने ग्राहक के मैले कपड़ों को धोये। इसी प्रकार नाई की दुकान का मालिक अपनी दुकान में इसलिये बैठेगा कि वह वहां आने वाले प्रत्येक व्यक्ति की सेवा करे।

***माननीय श्री बी.जी. खेर:** क्या इस शब्द में डाक्टर अथवा वकील के दफ्तर भी सन्निहित हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** निस्संदेह इसमें प्रत्येक ऐसा व्यक्ति सन्निहित है जो सेवा करने के लिये तैयार हो। मैं इस शब्द को उसके सामान्य अर्थ में प्रयोग में ला रहा हूं।

इसलिये मैं यह भी बताना चाहता हूं कि 'दुकान' शब्द यहां केवल इस सीमित अर्थ में प्रयुक्त नहीं है कि यहां प्रवेशमात्र हो सके। यह इस व्यापक अर्थ में प्रयुक्त है कि यदि सेवा के प्रतिबंधों को स्वीकार किया गया तो सेवा प्राप्त की जा सकती है।

दूसरा प्रश्न जो मुझसे पूछा गया है वह यह है कि क्या 'लोक-समागम के स्थानों' में कब्रिस्तान भी सन्निहित है। मेरा तो यह विचार था कि कब्रिस्तान के संबंध में बहुत कम लोगों की दिलचस्पी होगी क्योंकि कोई भी यह जानने की परवाह न करेगा कि उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका क्या होगा। परन्तु चूंकि मेरे मित्र श्री नागप्पा की इस विषय में दिलचस्पी है, इसलिये मैं यह कहना चाहता हूं कि निस्संदेह 'लोक समागम के स्थान' शब्दों में कब्रिस्तान भी सन्निहित होंगे, परन्तु प्रतिबंध यह है कि उनका पूर्णत: अथवा अंशत: लोक प्रणीवि से संधारण होता हो। जहां कोई ऐसे कब्रिस्तान नहीं है जिनका नगर-समिति से अथवा स्थानीय बोर्ड से अथवा तालुक बोर्ड से अथवा प्रान्तीय सरकार से अथवा ग्राम-पंचायत से संधारण होता है, तो निस्संदेह उसके संबंध में किसी को अधिकार नहीं है क्योंकि वह कोई ऐसा सार्वजनिक स्थान नहीं है जिसके संबंध में कोई व्यक्ति प्रवेश के

अधिकार का दावा कर सकता है। किन्तु यदि राज्य किसी कब्रिस्तान का संधारण करता है तो प्रत्येक व्यक्ति को स्पष्टतया यह अधिकार है कि वह अपने शरीर को वहां दफनवाये अथवा उसका दाह करवाये।

मेरे मित्र ने मुझसे यह भी पूछा है कि क्या जलाशयों में तालाब भी सन्निहित हैं। अवश्य ही वे सन्निहित हैं। जलाशय एक बड़ा आशय है, जिसमें तालाब अवश्य ही सन्निहित है।

मुझसे दूसरा प्रश्न यह पूछा गया कि क्या नदियां, झरने, नहरें और जलस्रोत अछूतों को उपलब्ध होंगे। निस्संदेह नदियां, झरने और नहरें अनुच्छेद 9 के अधीन नहीं आते हैं, परन्तु वे अवश्य ही अनुच्छेद 11 के अधीन आ जायेंगे, क्योंकि उसमें यह प्रावधान है कि यदि अन्य सम्प्रदायों की तुलना में अछूतों के साथ समान व्यवहार बरतने में किसी प्रकार का हस्तक्षेप किया गया, तो वह एक अपराध समझा जायेगा। इसलिये मैं श्री नागप्पा को यह उत्तर देना चाहता हूं कि नदियों, झरनों, नहरों इत्यादि के उपयोग के संबंध में उन्हें किसी प्रकार का भय न होना चाहिये क्योंकि यदि कहीं इस प्रकार की निर्योग्यता हो, तो पार्लियामेंट उसे दूर करने के लिये अनुच्छेद 11 के अधीन कानून बना सकेगी।

***श्री एस. नागप्पा:** जल-प्रवाह के संबंध में क्या होगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** इस अवसर पर मैं इस अनुच्छेद में अब और कुछ नहीं जोड़ सकता हूं। परन्तु मुझे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि नदियों और नहरों के संबंध में जो भी कार्यवाही आवश्यक होगी वह अनुच्छेद 11 के अधीन यथेष्ट तथा पर्याप्त रूप से की जायेगी।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या 'public' (लोक) शब्द के निर्वाचन के संबंध में कुछ न कहियेगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे मित्र श्री सिधवा ने 'public' (लोक) शब्द की कोई परिभाषा भारतीय दंड संहिता से पढ़ी और यह कहा कि 'public' (लोक) शब्द उसमें बहुत ही सीमित अर्थ में प्रयुक्त है अर्थात् उससे केवल एक वर्ग का बोध होता है। मैं उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि 'public' (लोक) शब्द का यहां एक विशेष अर्थ में प्रयोग हुआ है। कोई स्थान तभी लोक-समागम का स्थान कहा जा सकता है जबकि उसका अंशत: अथवा

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

पूर्णत: लोक-प्रणीवि से संधारण होता हो। इसका भारतीय दंड संहिता में दी हुई परिभाषा से कोई संबंध नहीं है।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): क्या मैं यह जान सकता हूं कि उन संशोधनों का क्या होगा जिनको आपने शब्दिक संशोधन घोषित किया है? उनमें से मेरे विचार से कुछ संशोधन ऐसे हैं जिनका उद्देश्य संबंधित अनुच्छेद अथवा खंड के सार में परिवर्तन करना है।

***उपाध्यक्ष:** इस संबंध में मैं स्वयं निर्णय कर सकता हूं। आपने मुझे स्वविवेक से निर्णय करने की शक्ति दी है और उसका मैं अपने ढंग से प्रयोग करूंगा।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं केवल सूचना चाहता हूं। मुझे आपके निर्णय अथवा आपके अधिकार से कोई विरोध नहीं है। मैं केवल यह जानना चाहता हूं कि क्या जिन संशोधनों की आज्ञा नहीं दी गई है उनके सम्बन्ध में सभा की भावना को समझने का प्रयत्न किया जायेगा और क्या मसौदा-समिति या कोई अन्य समिति इन संशोधनों पर विचार करेगी? मेरा यह सुझाव है कि इन शाब्दिक संशोधनों पर विचार करने के लिये और यह देखने के लिये, इनमें से कम से कम कुछ का उद्देश्य यह तो नहीं है कि सम्बन्धित खण्ड के अर्थ में परिवर्तन किया जाये, यदि आप कृपा करके एक छोटी-सी उप-समिति नियुक्त कर देंगे तो इससे इस सभा का हित-साधन होगा। आपने जो कुछ कहा है उसका मैं विरोध नहीं कर रहा हूं। आपने निर्णय कर दिया है इसलिये वे औचित्य-दृष्टि से अमान्य तो हैं ही, परन्तु अर्ध-विरामों और विरामों का भी कुछ महत्त्व होता है। मेरी यही प्रार्थना है कि..

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं इससे अच्छी एक प्रणाली का सुझाव कर सकता हूं जिसे सम्भवत: आप पसंद करें क्योंकि यह प्रणाली एक उप-समिति नियुक्त करने की प्रणाली से अच्छी है? जिन सदस्यों का यह विश्वास है कि उनके संशोधन सारपूर्ण हैं वे मसौदा-समिति से स्वयं परामर्श कर सकते हैं। यदि वे ऐसा करेंगे तो उनकी बातों पर यथोचित विचार किया जायेगा।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मुझे अब संतोष हो गया है।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** चूंकि संशोधन संख्या 315 के संबंध में माननीय डा. अम्बेडकर ने संतोषजनक रूप से मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दिया है, इसलिये मैं उसे वापस लेने के लिये सभा की अनुमति चाहता हूं।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्ष:** अब मैं अन्य संशोधनों पर सभा का मत लूंगा। डा. अम्बेडकर ने पहले संशोधन को स्वीकार कर लिया है।

प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 276 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'अनुच्छेद 9 के खंड (1) के दूसरे पैरा को नये खंड (1-क) की संख्या दी जाये और इस प्रकार जो नया खंड बने उसमें से ''in particular'' (विशेषतया) शब्द निकाल दिये जायें।'

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद 279वां संशोधन आता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 में 'race' (प्रजाति) शब्द के बाद 'birth' (जन्म) शब्द प्रविष्ट किया जाये।''

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद 280वां संशोधन आता है जो मेरे विचार से डा. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 में जहां कहीं 'sex' (लिंग) शब्द आये उसके बाद, 'place of birth' (जन्म-स्थान) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन संख्या 286 के दूसरे भाग पर आते हैं। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'restaurants, hotels' (उपहारगृहों, विश्रान्तिगृहो) शब्दों के बाद 'dharamshalas, musafirkhanas' (धर्मशालाओं, मुसाफिरखानों) शब्द रखे जायें।''

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 293, प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड 1 में उपखंड (क) और (ख) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'any place of public use or resort, maintained wholly or partly out of the revenues of the State, or in any way aided, recognised, encouraged or protected by the State, or place dedicated to the use of general public like schools, colleges, libraries, temples, hospitals, hotels and restaurants, places of public entertainment, recreation or amusement, like theatres and cinema-houses or concert-halls; public parks, gardens or museums; roads, wells, tanks or canals; bridges, posts and telegraphs, railways, tramways and bus services; and the like.' ''

(लोक-उपयोग अथवा लोक-समागम का कोई स्थान, जिसका अंशत: अथवा पूर्णत: संधारण राज्य के आगम से होता हो अथवा जिसको राज्य किसी प्रकार सहायता, स्वीकृति, प्रोत्साहन अथवा रक्षण प्रदान करता हो, अथवा जनसाधारण के उपयोग के लिये समर्पित कोई स्थान जैसे स्कूल, कालेज, पुस्तकालय, मंदिर, अस्पताल, विश्रान्तिगृह और उपहारगृह, सार्वजनिक आमोद-प्रमोद तथा मनोविनोद के स्थान जैसे नाट्यशाला और छविगृह अथवा वाद्यशाला, सार्वजनिक उद्यान, बगीचे अथवा कौतुकालय; सड़कें, कुंएं, तालाब अथवा नहरें; पुल, डाक और तार, रेल, ट्राम और बस, आदि)

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** अब हम 296वें संशोधन पर आते हैं। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 के खण्ड (1) वे उपखंड (क) में 'public entertainment' (सार्वजनिक आमोद-स्थानों) शब्दों के बाद 'or places of worship' (अथवा उपासना के स्थान) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** मुझे स्मरण नहीं है कि संशोधन संख्या 299 का क्या हुआ। इसके सम्बन्ध में निश्चय कर लेने के उद्देश्य से मैं इस पर मतदान लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 के खण्ड (1) के उपखंड (क) में से 'public' (सार्वजनिक) शब्द निकाल दिया जाये।''

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 301, जो मि. तजम्मुल हुसैन के नाम से है प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'public' (सार्वजनिक) और 'restaurants' (उपहारगृहों) के बीच में 'places of worship, Dharamshalas, Musafirkhanas' (उपासना के स्थानों, धर्मशालाओं, मुसाफिरखानों) शब्द रखें जायें।''

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 303, दुहराये हुये रूप में। मेरे विचार से डा. अम्बेडकर ने उसे स्वीकार किया है। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 क खंड (1) के दूसरे पैरा के उपखंड (ख) में 'wells, tanks' (कुंओं, जलाशयों) शब्दों के बाद 'bathing ghats' (नहान घाट) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब संशोधन संख्या 305 आता है। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (1) के उपखंड (ख) में 'roads' (सड़कों) शब्द के बाद एक कोमा और 'hospitals, educational institutions' (अस्पतालों, शिक्षा-संस्थाओं) शब्द जोड़ दिये जायें।''

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 314, प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (1) के दूसरे पैरा के उपखंड (ख) में 'the revenues of the State' (राज्य-आगम) शब्दों के स्थान में 'State funds' (राज्य-प्रणीवि) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब हम अन्तिम संशोधन पर आते हैं, जो प्रोफेसर शाह के नाम से है। संख्या 323। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 9 के खंड (2) के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

'or for Scheduled castes or backward tribes, for their advantage, safeguard or betterment.' ''

[उपाध्यक्ष]

(अथवा अनुसूचित जातियों अथवा पिछड़ी हुई जातियों के लिये उनके लाभ, अभिरक्षण अथवा उन्नति के उद्देश्य से)

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं इस संशोधित अनुच्छेद पर मत लूंगा। सभा के सम्मुख यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 9, संशोधन रूप में विधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 10

***उपाध्यक्ष:** क्या अब हम आगे का अनुच्छेद अर्थात् नया अनुच्छेद 9-क उठायें? इसके सम्बन्ध में जो संशोधन प्रस्तावित हैं वे निदेशक सिद्धान्तों के रूप में हैं। मैं उनको उपस्थित करने की आज्ञा नहीं देता। अब हम अनुच्छेद 10 को उठाते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): मेरी समझ से इसे स्थगित रखने का विचार है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं आपसे इस अनुच्छेद को स्थगित करने की प्रार्थना करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब हम आगे के अनुच्छेद 10-क को उठाते हैं।

(*369वां संशोधन उपस्थित नहीं किया गया।*)

अनुच्छेद 11

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 11 को उठाते हैं। सभा के सम्मुख यह प्रस्ताव है कि अनुच्छेद 11 विधान का अंग बना लिया जाये। अब हम संशोधनों को एक-एक करके उठायेंगे। संशोधन संख्या 370 नियमानुकूल नहीं है। संशोधन संख्या 371, 372, 373 तथा 375 और 378 भी इसी प्रकार है। मेरा यह सुझाव है कि संशोधन संख्या 375 उपस्थित किया जाये।

(*संशोधन संख्या 375 और 371 उपस्थित नहीं किये गये।*)

***उपाध्यक्ष:** संख्या 372। मि. नजीरुद्दीन अहमद!

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

''अनुच्छेद 11 के स्थान में निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'11 कोई व्यक्ति अपने धर्म अथवा अपनी जाति के आधार पर न अस्पृश्य समझा जायेगा और न उसके साथ अस्पृश्य के समान व्यवहार किया जायेगा और अस्पृश्यता को किसी भी रूप में बरतना कानून के अधीन दंडनीय होगा।' ''

मेरा यह निवेदन है कि मूल अनुच्छेद 11 कुछ अस्पष्ट है। 'untouchability' (अस्पृश्यता) का कोई कानूनी अर्थ नहीं है, यद्यपि राजनीति के प्रसंग में हम सब इसका अर्थ समझते हैं। कानून की दृष्टि से इससे बहुत भ्रम हो सकता है। 'अस्पृश्य' शब्द इतनी प्रकार की चीजों के सम्बन्ध में प्रयुक्त होता है कि हमें इस शब्द को इसी प्रकार न रहने देना चाहिये। किसी महामारी अथवा छूत की बीमारी से पीड़ित व्यक्ति को अस्पृश्य कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ खाद्य-पदार्थ हिन्दुओं और मुसलमानों के लिये अस्पृश्य है। कुछ विचार-धाराओं के अनुसार अन्य परिवारों की महिलायें अस्पृश्य समझी जाती है। पंडित ठाकुरदास भार्गव के मतानुसार 15 वर्ष से कम आयु की पत्नी अपने प्यारे पति के लिये अस्पृश्य होगी क्योंकि उसे स्पर्श करना शिष्टता की दृष्टि से अनुचित व्यवहार होगा। श्रीमान् मेरा यह निवेदन है कि 'अस्पृश्य' शब्द बहुत कुछ भ्रामक है। इसीलिये मैंने उसे उचित रूप से रखने का प्रयास किया है और वह इस प्रकार कि कोई व्यक्ति अपने धर्म अथवा अपनी जाति के आधार पर अस्पृश्य नहीं समझा जायेगा। धर्म अथवा जाति के आधार पर ही अस्पृश्यता वर्जित है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, इस सम्बन्ध में मुझे एक शब्द और कहना है और वह यह है कि इस खंड की तीसरी पंक्ति में वाक्य के बीच में, 'untouchability' शब्द के आरम्भ में बड़ा अक्षर है। यह मसौदा-समिति के देखने की बात है।

(*संशोधन संख्या 373 और 378 उपस्थित नहीं किये गये।*)

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 374, 376, 377, 379, 380 और 381 को शाब्दिक संशोधन समझता हूं और उन्हें उपस्थित करने की आज्ञा नहीं देता हूं। केवल 372वां संशोधन उपस्थित किया गया है। अब अनुच्छेद पर सामान्य विचार-विमर्श हो सकता है। मैं श्री मुनिस्वामी पिल्ले से बोलने के लिये आग्रह करता हूं।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यह एक बड़े संतोष की बात है कि हमारे विधान में एक महत्त्वपूर्ण प्रावधान को स्थान दिया गया है जिससे हमारे महान देश में अस्पृश्यता का अन्त हो जायेगा। श्रीमान्, यद्यपि अनुच्छेद 9 में कई ऐसी सुविधाओं की व्यवस्था की गई है जो अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिये आवश्यक है किन्तु अस्पृश्यता के सम्बन्ध में तथा उसे समाप्त करने के उद्देश्य से जो खंड है, उससे संसार को अच्छी प्रकार यह ज्ञात हो जायेगा कि जो अभागे सम्प्रदाय इस समय अछूत कहे जाते हैं, वे इस विधान के प्रयोग में आने पर अपने बन्धनों से मुक्त हो जायेंगे। इस प्रावधान से भारतीय राष्ट्र के एक विशेष वर्ग का ही हित न होगा किन्तु भारत की जनसंख्या का छठा भाग इस धारा का स्वागत करेगा, जिससे कि इस देश में अस्पृश्यता का मूलोच्छेदन हो जायेगा। श्रीमान्, इस देश में जाति-विभेद के कारण एक विशेष वर्ग अस्पृश्यता के बन्धनों से जकड़ा रहा है और वे युगों से तथाकथित सवर्ण हिन्दुओं और ऐसे सभी लोगों के हाथों सताये जाते रहे हैं जो अपने को ताल्लुकदार और जमीदार कहते आये हैं और वे उन साधारण सुविधाओं से भी वंचित रहे हैं जो किसी भी मनुष्य के लिये जीवन धारण करने के लिये आवश्यक हैं। अस्पृश्यता का अभिशाप कुछ वर्गों के लिये असह्य हो गया और कई लोगों ने अपना धर्म छोड़ कर उन धर्मों की शरण ली जिनके अनुयायियों ने उनके प्रति सहिष्णुता दिखाई। श्रीमान्, मेरा यह विश्वास है कि इस खंड को स्वीकार करने से कई हिन्दू हरिजन जो अनुसूचित जातियों के हैं यह अनुभव करेंगे कि अब उन्हें समाज में उच्च स्थान प्राप्त हो गया है। मुझे विश्वास है कि सारा देश विधान में अनुच्छेद 11 के समावेश का स्वागत करेगा।

***डा. मनमोहन दास** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अस्पृश्यता सम्बन्धी इस खंड में मूलाधिकारों में से एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अधिकार सन्निहित है। इस खंड में किसी अल्पसंख्यक समुदाय को किसी प्रकार के विशेषाधिकार अथवा अभिरक्षण प्रदान करने का प्रस्ताव नहीं है किन्तु इसका उद्देश्य भारतीय राष्ट्र के छठे भाग को चिरस्थायी दासत्व, नैराश्य, आत्म-ग्लानि तथा अपमान से मुक्त करना है। अस्पृश्यता की प्रथा से करोड़ो भारतीय अंधकार और निराशा में डूबे रहे तथा लज्जा और अपमान का अनुभव करते रहे और यही नहीं, इसके कारण हमारे राष्ट्र की सजीवता ही नष्ट हो गई। श्रीमान्, मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यह सभा इस खंड को एकमत से स्वीकार करेगी। इसके लिये भारतीय कांग्रेस तो वचनबद्ध है ही परन्तु साथ ही यदि हमें इस देश के करोड़ों अछूतों के प्रति न्याय करना है और विदेशों में सद्भाव बढ़ाना है और अपनी प्रतिष्ठा ऊंची

करनी है तो हमें इस खंड को, जिसके द्वारा अस्पृश्यता को बरतना एक दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया है, स्वतंत्र भारत के विधान में अवश्य ही स्थान देना होगा। श्रीमान्, मुझे ऐसा विश्वास नहीं होता कि इस आदरणीय सभा में भी कोई ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो इस अनुच्छेद की भावना अथवा इसके सिद्धान्त का विरोध करे। इसलिये, श्रीमान्, मेरे विचार से आज 29 नवम्बर सन् 1948 ई. का दिन हम अछूतों के लिये एक स्मरणीय दिवस है। यह दिवस इतिहास में मुक्ति-दिवस के नाम से अथवा इस विशाल देश के पांच करोड़ भारतीयों के उत्थान के दिवस के नाम से प्रख्यात होगा। इस नवयुग के उषाकाल में मुझे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के संतृप्त हृदय से निकले हुये किन्तु प्रेम तथा सहानुभूति से परिपूर्ण वे शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ रहे हैं जो उन्होंने हम अछूतों और पददलित लोगों के लिये कहे थे। गांधी जी ने कहा था, ''मैं अपना पुनर्जन्म नहीं चाहता किन्तु यदि मेरा जन्म हुआ तो मैं एक हरिजन, एक अछूत के रूप में जन्म लेना चाहूंगा ताकि मैं अपने जीवन भर निरंतर उस अत्याचार और अनाचार से संघर्ष करता रहूं जो इस वर्ग के लोगों के साथ बराबर किया जाता रहा है।'' यदि भारत की आबादी के पांचवें भाग को सदा दासत्व में रखा गया तो स्वराज का हमारे लिये कुछ भी अर्थ न होगा। महात्मा गांधी हम जीवित लोगों के बीच से उठ गये हैं। यदि वे जीवित होते तो आज उनसे अधिक किसी मनुष्य को हर्ष व संतोष न होता। महात्मा गांधी ही नहीं किन्तु स्वामी विवेकानन्द, राजा राममोहन राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा इस प्राचीन देश के अन्य महापुरुष तथा दार्शनिक जिन्होंने इस घृणित प्रथा के विरुद्ध सतत् संघर्ष किया, आज यह देख कर अत्यन्त हर्षित होते कि आखिर स्वतंत्र भारत ने भारतीय समाज से इस कुप्रथा को मिटा दिया है। हिन्दू होने के नाते मैं आत्मा के अमरत्व पर विश्वास करता हूं। इन महापुरुषों के देश प्रेम तथा जीवन-पर्यन्त सेवा से ही भारत को आज सम्मानित पद प्राप्त हुआ है और आज अस्पृश्यता की घृणित प्रथा का अन्त करने में हमारा साहस देख कर उनकी आत्माएं हर्षित हो रही होंगी।

अन्त में, मैं अपने महान् और प्रतिष्ठित कानून-मंत्री तथा मसौदा-समिति के सभापति के सम्बन्ध में दो-चार शब्द कहे बिना नहीं रह सकता। यह विधि की विडम्बना है कि उस व्यक्ति को ही, जिसे एक स्कूल से निकाल कर दूसरे स्कूल में भेजा गया था और जिसे कक्षा के बाहर सबक सीखने के लिये बाध्य किया गया था, आज स्वतंत्र भारत का विधान बनाने का महान् कार्य सौंपा गया है। जिस अस्पृश्यता की प्रथा से वे अपने बाल्यकाल में पीड़ित रहे, उस पर उन्होंने आज ऐसा प्रहार किया है कि उसकी मृत्यु ही हो गई है।

[डा. मनमोहन दास]

श्रीमान्, इस विषय पर अपने विचारों को प्रकट करने के लिये आपने मुझे जो अवसर दिया है उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***श्री शान्तनुकुमार दास** (उड़ीसा : जनरल): सभापति जी, आज मुझे क्लाज 11 के मुताल्लिक बोलने का जो मौका दिया गया उसके लिये मैं आपको पहले धन्यवाद देता हूं।

इस क्लाज का मतलब यह है कि सामाजिक वैषम्य, सामाजिक कलंक और सामाजिक बन्धन कैसे दूर हों। सब लोग चाहते हैं कि किसी तरह यह अनटचेबिलिटी उठ जाये, मगर कोई मदद नहीं देते हैं। सब चाहते हैं कि अनटचेबिलिटी समाज में न रहे और इसके लिये क्यों बहुत बहस की जाती है। मैं चाहता हूं कि हम लोग यहां आकर कानून बनायें और आदेश दें कि देहात में जो जनता है, उसका पालन करे। हम यहां आकर कानून बनायें पर आदेश दूसरे लोगों को दें, यह कैसी बात है? यह नामुमकिन सी बात है। सभापति जी, आप इसको सुन कर बड़े ताज्जुब में होंगे कि प्रान्तीय सरकार हरिजनों के लिये सुविधा कर देती है, रिमूवल आफ अनटचेबिलिटी बिल और रिमूवल आफ डिसएबिलिटी बिल और टम्पिल एण्ट्री बिल कर देती है। पर हमारे जो सदस्यगण है वह हमारे प्रान्त में देहात में जाकर फिफ्थ कालम का काम करते हैं और वहां जाकर कहते हैं कि यह कानून लागू नहीं है और दूसरे वह कानून के खिलाफ करते हैं। मैं इस हाउस में जो सदस्यगण हैं, उनसे अनुरोध करूंगा कि वह चेष्टा करें कि यह कानून कार्यकारी कैसे हो और इसके कार्यकारी होने से भारतवर्ष में जो सामाजिक वैषम्य है वह सब दूर हो जायेगा। मैं पूरी तौर से इस क्लाज का समर्थन करता हूं।

***श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, हमें ऐसे विधान की आशा न थी जिसमें अस्पृश्यता-सम्बन्धी कोई खंड न हो क्योंकि मसौदा-समिति के सभापति स्वयं अछूत जाति के हैं। मैं इसका ब्यौरा नहीं देने जा रही हूं कि इतिहास में किन बातों का उल्लेख है और अतीत काल से धार्मिक अध्यक्षों ने कौन से कार्य किये हैं। आपको यह विदित ही है कि सभी धार्मिक उपदेशक अस्पृश्यता की प्रथा का विरोध करते रहे हैं। आधुनिक युग में महात्मा गांधी ने इसका बीड़ा उठाया और उन्होंने देश के सम्मुख जो रचनात्मक कार्यक्रम रखा उसका एक अंग अस्पृश्यता का अन्त करना भी था। जब मैं कालेज में पढ़ती थी तो मेरा एक सहपाठी मेरे पास आया और उसने मुझसे अस्पृश्यता को समाप्त

करने के कार्य के लिये चन्दा मांगा। मैंने उसे यह उत्तर दिया कि 'आप ही इसके लिये उत्तरदायी हैं और इसलिये आप ही इसके लिये धन-संग्रह कीजिये। यह उचित नहीं है कि इसके लिये आप मुझ से धन देने के लिये कहें।' अपने बाल्यकाल में ही अस्पृश्यता के विचार से मेरे आत्मसम्मान को ठेस पहुंचती थी। पाठशाला में ऐसे सार्वजनिक स्थानों में भी जब कभी चाय आदि के लिये समागम होता था, तो अस्पृश्यता बरती जाती थी। ऐसे अवसरों पर मैं सहयोग ही किया करती थी। केवल महात्मा गांधी के ही प्रयास के कारण आज लोगों के हृदय में परिवर्तन हो गया है। हम आज यह देखते हैं कि अछूतों के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बहुत बदल गया है। हम आज यह देखते हैं कि लोग सवर्ण हिन्दू कहे जाते हैं उनको अस्पृश्यता के विचार से और इस शब्द से ही घृणा है और वे नहीं चाहते कि वे उसके लिये ताड़ित किये जायें क्योंकि उन्होंने यह स्वीकार किया है कि उसके लिये वे उत्तरदायी हैं और यह प्रतिज्ञा की है कि वे इस देश से उसको मिटा देंगे। यद्यपि तथाकथित सवर्ण हिन्दुओं के दृष्टिकोण में बहुत सुधार हो गया है परन्तु हम केवल इससे संतुष्ट नहीं हो सकते। हम यह नहीं चाहते कि विधान के प्रभाव में आने पर लोग कानून भंग करने के लिये दंडित किये जायें, परन्तु इसे आवश्यक समझते हैं कि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकार दोनों यथोचित प्रचार करें। तभी उस प्रकार का सुधार हो सकेगा, जैसा कि हम चाहते हैं। यदि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों ने इसके पहले कार्यवाही की होती, तो विधान में इस प्रकार के अनुच्छेद की आवश्यकता ही न होती। पिछले वर्ष विधान-परिषद् के सम्मुख मैंने इस आशय का एक प्रस्ताव रखा था कि अस्पृश्यता को गैरकानूनी घोषित कर देना चाहिये। जब मैं पंडित जी से मिली तो उन्होंने मुझसे कहा कि यह कोई कांग्रेस समिति तो है नहीं जिसमें इस प्रकार का प्रस्ताव उपस्थित किया जा सके और यह भी कहा कि इस पर यथासमय विचार होगा। मैंने यह कहा कि यदि विधान-परिषद् में इस प्रकार की घोषणा की गई तो इसका बहुत प्रभाव होगा। मैंने यह भी कहा कि हमारी इस प्रथा के कारण दक्षिण अफ्रीका के लोग हमारी आलोचना कर रहे हैं और यदि इस सभा द्वारा इसी समय यह घोषणा कर दी जाये तो इससे लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ेगा और फिर हमारे लिये यह आवश्यक न होगा कि हम इस प्रकार के खंड का अपने विधान में सन्निवेश करें।

***उपाध्यक्ष:** आपने अपने समय से अधिक समय ले लिया है। चूंकि आप महिला हैं, इसीलिये मैं आपको बोलने दे रहा हूं।

***श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन:** विधान का प्रयोग इस पर नहीं निर्भर करेगा कि कानून वास्तव में किस प्रकार प्रयोग में आये, बल्कि इस पर निर्भर करेगा कि

[श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन]

लोग भविष्य में किस प्रकार का व्यवहार करेंगे। इसलिये मेरी यह आशा है कि आगे चलकर ऐसा कोई समुदाय नहीं रह जायेगा जिसे अछूत समुदाय के नाम से कहा जायेगा और विदेश में यदि किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में इस प्रकार के प्रश्न को छेड़ा गया तो हमारे प्रतिनिधियों को लज्जित होकर अपना सिर न झुकाना पड़ेगा।

***प्रो. के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, सम्भव है कि आगे चल कर मैं जो बातें कहूं उनसे किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न हो जाये, इसलिये मैं आरम्भ में ही यह कह देना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद की भावना से अथवा इसकी शब्दावली से मुझे कोई विरोध नहीं है। किन्तु मेरी यह धारणा है कि इस शब्दावली की कुछ त्रुटियां दूर की जा सकती है। यदि मैं इस सभा के सम्मुख अथवा मसौदा-समिति के सभापति के सम्मुख जो कुछ रखूं उस पर वे विचार करें, तो मेरा यह विश्वास है कि वे स्वयं इस अनुच्छेद में कुछ संशोधन कर सकेंगे।

पहले मैं यह बताना चाहता हूं कि 'अस्पृश्यता' की कहीं भी परिभाषा नहीं की गई है। विधान में एक पारिभाषिक खंड का अभाव है। इसलिये हमें यह समझने में बहुत कठिनाई होती है कि किसी खंड-विशेष का क्या अर्थ है और यह किस प्रकार प्रभाव में लाया जायेगा। यह कह कर कि अस्पृश्यता का किसी भी रूप में आचरण अपराध समझा जायेगा और कानून के अधीन दंडनीय होगा, आप केवल 'अस्पृश्यता को समाप्त करने के सामान्य सिद्धांत का अनुसरण कर रहे हैं। मैं सभा के सम्मुख स्वीकृत अथवा अनुमति-प्राप्त अस्पृश्यता के आचरण के कुछ दृष्टान्त रखना चाहता हूं, जिनमें कुछ विशेष समुदायों अथवा व्यक्तियों पर कुछ समय के लिये ऐसी अयोग्यता लागू की जाती है जो बहुत कुछ अस्पृश्यताजन्य ही होती है। हम सभी को विदित है कि कुछ कालों के लिये औरतें अस्पृश्य समझी जाती हैं। क्या यह इस अनुच्छेद के अधीन दंडनीय समझा जायेगा? यदि मैं भूल नहीं रहा हूं और मुझे ठीक याद है तो कुरान की एक सूरा में इसका विशेष रूप से और निश्चित रूप से उल्लेख है। क्या रसूल के अनुयायियों द्वारा अपने धर्म के आचरण को आप एक अपराध घोषित कर देंगे? इसके अतिरिक्त अत्येष्टि-क्रिया और क्रिया-कर्म के सम्बन्ध में कई प्रथायें ऐसी हैं कि जो लोग उनमें भाग लेते हैं वे कुछ काल के लिये अस्पृश्य समझे जाते हैं। मैं शरीर-विज्ञान अथवा तत्सम्बन्धी विषयों के सम्बन्ध में भाषण देकर इस सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता, परन्तु मैं अवश्य ही उसके ध्यान में यह लाना चाहता हूं कि 'अस्पृश्यता' की परिभाषा न होने के कारण वकील अथवा कुचक्री लोग इस प्रकार के खंड

का मनमाना अर्थ लगाऐंगे। मेरा यह विश्वास है कि मसौदा-समिति का यह उद्देश्य नहीं है।

श्रीमान्, मैं एक उदाहरण और दूंगा जो शुद्धता अथवा सफाई के सम्बन्ध में है और जिसकी मसौदा बनाने वालों ने नितान्त उपेक्षा की है। संक्राम्य रोगों का और उनमें पीड़ित रोगियों का क्या होगा क्योंकि जब तक वे इन रोगों से ग्रस्त रहें, उन्हें अलग रखना और अस्पृश्य बनाना आवश्यक है? श्रीमान्, मुझे एक ऐसी घटना स्मरण है जो एक ख्यातनामा व्यक्ति पर बीती क्योंकि वे कोढ़ से पीड़ित थे। उन्हें एक सार्वजनिक-यान-प्रमंडल ने एक जगह से दूसरी जगह ले जाना अस्वीकार कर दिया। सभी सरकारी अधिकारियों से इस आशय का एक अधिकार-पत्र प्राप्त करने के लिये कहा—सुना गया कि उन्हें वायुयान में इस प्रकार ले जाया जाये कि अन्य यात्रियों को कोई हानि न हो। मुझे ज्ञात नहीं है कि वे इस विपत्ति से अपने धन द्वारा मुक्त हुये, अथवा दान द्वारा। मुझे विश्वास है कि इस उदाहरण से मसौदा-समिति को चेतावनी मिलेगी। इसके अतिरिक्त यदि उदाहरणार्थ कोई नगर-समिति निरोध सम्बंधी कोई ऐसा अस्थायी नियम बनाये जिसके अनुसार संक्राम्य अथवा छूत के रोगों से पीड़ित लोगों को उस समय तक अलग रखना और अस्पृश्य समझना आवश्यक हो जब तक वे अच्छे न हो जायें, तो क्या आप उस नगर-समिति की इस कार्यवाही को 'अवैधानिक' अथवा कानून के अधीन दंडनीय कहेंगे? मेरा यह विश्वास है कि मसौदा-समिति के सभापति मेरे सुझाव में कुछ सार देखेंगे और उस पर सामान्य रूप से विचार करके उसे अस्वीकार कर देंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता हूं।

***उपाध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर, क्या आप श्री शाह के सुझाव का उत्तर देना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** जी नहीं।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 372 पर मत लेता हूं।

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 11 को आपके सम्मुख रखता हूं।

[उपाध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 11 विधान का अंग बना दिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय सदस्य:** ''महात्मा गांधी की जय।''

अनुच्छेद 11 क तथा ख

***उपाध्यक्ष:** हमारे पास अभी पांच मिनट और हैं और मैं उनका उपयोग करना चाहता हूं। मि. लारी के नाम से दो नये अनुच्छेद 1-क और ख है। संशोधन संख्या 382।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 11 के पश्चात् निम्नलिखित नये अनुच्छेद प्रविष्ट किये जाये:

'11 क Imprisonment for debt is abolished'

(ऋण के लिए कारावास-दंड का अन्त किया जाता है)

11-ख Capital punishment except for sedition involving use of violence is abolished.' ''

(हिंसात्मक राजद्रोह के अतिरिक्त अन्य अपराधों के लिये मृत्यु-दंड का अन्त किया जाता है।)

श्रीमान्, इन दो खंडों में अंतर है और इसलिये उन पर विचार होते समय और उन्हें स्वीकार करते समय सभा के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह उन्हें एक साथ ही स्वीकार करे अथवा अस्वीकार कर दे। सभा इनमें से एक को स्वीकार कर सकती है और दूसरे को अस्वीकार कर सकती है अथवा दोनों को स्वीकार कर सकती है।

***उपाध्यक्ष:** उन्हें आप अलग-अलग क्यों नहीं उपस्थित करते हैं?

***श्री जैड.एच. लारी:** तब में 11-ख को पहले उपस्थित करता हूं। सभा को स्मरण होगा कि अब पिछले अधिवेशन में वह कानून बनाने वाली सभा के रूप में समवेत हुई थी, तो उस समय इसके सम्मुख इस आशय का एक विधेयक था कि भारतीय दंड संहिता की धारा 53 में संशोधन किया जाये। वह विधेयक

गृह-विभाग की स्थायी परामर्श-समिति के पास भेजा गया था जो 10 मार्च सन् 1948 ई. को सम्मिलित हुई थी। वहां उसने यह विचार किया और इस निर्णय पर पहुंची कि मृत्यु-दंड के इस विषय पर यही सभा विचार करे। इसी पर विधेयक पर विचार-विमर्श स्थगित हो गया। अब मैं उसे इस सभा के सम्मुख उस रूप में रख रहा हूं जिसे स्थायी समिति ने निश्चित किया था।

जहां तक मृत्यु-दंड को समाप्त करने के प्रश्न का सम्बन्ध है, मुझे यह कहना है कि अन्य विभिन्न देशों में उसे समाप्त कर दिया गया है। कम से कम तीन देशों में, जिनमें न्यूजीलैंड का अधिराज्य, रूस, हालैंड, बेल्यिजम और स्विट्जरलैंड सम्मिलित हैं, मृत्यु-दंड को समाप्त कर दिया गया हैं कुछ ही दिन हुये यह प्रश्न कामन्स सभा में उठाया गया था और इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया था। इसमें सन्देह नहीं कि लार्ड्स सभा ने इसका विरोध किया जिसका फल यह हुआ कि कामन्स सभा के सम्मुख मृत्यु-दंड समाप्त करने के लिये जो विधेयक पेश किया गया था उसे अस्वीकार करना पड़ा। परन्तु जहां तक कामन्स सभा का सम्बंध है उसने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है।

मैं सभा के सम्मुख केवल तीन तर्क उपस्थित करूंगा। पहला तो यह है कि किसी भी मनुष्य का निर्णय दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक न्यायाधीश, प्रत्येक न्यायाधिकरण त्रुटि कर सकता है। परन्तु मृत्यु-दंड का निराकरण नहीं हो सकता है। यदि आप यह दंड देने का निश्चय कर लेते हैं तो संबंधित मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। यह हो सकता है कि न्यायाधिकरण ने कोई त्रृटि की हो मैं ऐसे मामलों को जानता हूं जिनमें बाद को यह ज्ञात हुआ कि जिस व्यक्ति को दंड दिया गया था वह वास्तव में अपराधी नहीं था। परन्तु फिर यह किसी मनुष्य की शक्ति में नहीं रह गया था कि वह उस त्रुटि को ठीक कर दे। यह एक विचारणीय बात है।

दूसरी विचारणीय बात यह है कि मानव-जीवन की पवित्रता को सभी ने स्वीकार किया है। यदि अन्य मनुष्यों के जीवन की रक्षा करने का कोई अन्य उपाय न हो तो किसी व्यक्ति को मृत्यु-दंड दिया जा सकता है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या मृत्यु-दंड ऐसे अपराधों को रोकने के लिये आवश्यक है जिनके कारण मनुष्यों को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ते हैं। मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि कम से कम तीस देशों ने यह निर्णय किया है कि मृत्यु-दंड की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं है और पिछले दस-बीस वर्षों से उनके यहां यह दंड नहीं

[श्री जैड.एच. लारी]

दिया जाता रहा है परन्तु इससे अपराधों में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं हुई। इसलिये इन सभी देशों का अनुभव इस ओर संकेत करता है कि बिना इस दंड का आश्रय लिये भी आप देश का शासन चला सकते हैं। सभा के लिये यह दूसरी विचारणीय बात है।

तीसरी विचारणीय बात यह है कि यह दंड वास्तव में हृदय विदारक और पाशविक है और वर्तमान युग की भावनाओं के अनुरूप नहीं है। मेरा यह निवेदन है कि यदि हमने इस मृत्यु-दंड को समाप्त कर दिया तो इससे देश का और देशवासियों का हित ही होगा। कई दशाब्दी पहले डिकेन्स ने यह कहा था कि वास्तव में इस दंड से लोगों के उस वर्ग को प्रोत्साहन मिलता है, जो हत्या करने पर तुला रहता है क्योंकि इससे वह एक प्रकार के बलिदान का अनुभव करता है। इसका सम्बन्ध अपराधियों के केवल उस वर्ग से है जो जानबूझ कर किसी उद्देश्य से हत्या करते हैं। जो लोग किसी अवसर-विशेष पर उत्तेजनावश होकर हत्या कर डालते हैं, मेरा यह निवेदन है कि उन्हें आजन्म कारावास का दंड देकर इससे अच्छी प्रकार दंडित किया जा सकता है क्योंकि वे कई वर्षों तक जीवित रहेंगे और अपने कार्यों के लिये पश्चाताप करेंगे। सम्भव है इससे वे सुधर जायें।

अन्त में मेरा यह निवेदन है कि किसी दंड का सुधार का अंग ही सबसे महत्त्वपूर्ण है और इसी की ओर मुख्यतः ध्यान देना चाहिये।

इन्हीं सब विचारों को अर्थात् मनुष्य के निर्णय में त्रुटि की सम्भावना, मनुष्य-जीवन की पवित्रता और दंड के उद्देश्य को ध्यान में रख कर हमें मृत्यु-दंड को समाप्त करने के पक्ष में अपना मत देना चाहिये।

मैंने एक अपवाद रखा है जो उस स्थिति से संबंध रखता है जिससे राज्य संकट में पड़ जाये, स्वभावतः जब राज्य का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाये और अनेक लोगों के प्राणघात की आशंका हो तो यह कहा जा सकता है कि हमें कोई बात उठा न रखनी चाहिये और लोगों को संकट में न डालना चाहिये। मेरा तो यह कहना है कि ऐसा समय आयेगा जब इस अपवाद की भी आवश्यकता न रह जायेगी। परन्तु इस अनुच्छेद को विधान में स्थान देते हुये हमें इस अपवाद को भी स्वीकार कर लेना चाहिये, क्योंकि इस देश की संसद को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह दो-तीन वर्षों में आगे कदम बढ़ाये और मृत्यु-दंड को पूर्णतया समाप्त कर दे।

इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं इसे उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्षः** तब क्या आप 11-क को कल उपस्थित करेंगे?

***श्री जैड.एच. लारीः** जी नहीं, मैं उसे उपस्थित नहीं करूंगा।

***उपाध्यक्षः** सभा कल प्रातः साढ़े नौ बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् विधान-परिषद् मंगलवार, ता. 30 नवम्बर सन् 1948 ई. के प्रातः साढ़े नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।